कल्याण
वर्ष ३०] [अङ्क ७

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥
जयति शिवा-शिव जानकि-राम। जय रघुनन्दन जय सियाराम ॥
रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम ॥
जय जय दुर्गा जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा ॥

विषय-सूची

कल्याण, सौर श्रावण २०१३, जुलाई १९५६

चित्र-सूची

तिरंगा

वार्षिक मूल्य भारतमें ७॥) विदेशमें १०) (१५ शिलिंग)

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत चित आनँद भूमा जय जय ॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय ॥
जय विराट जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते ॥

साधारण प्रति भारतमें ।≤) विदेशमें ॥–) (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री
मुद्रक-प्रकाशक—घनश्यामदास जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर
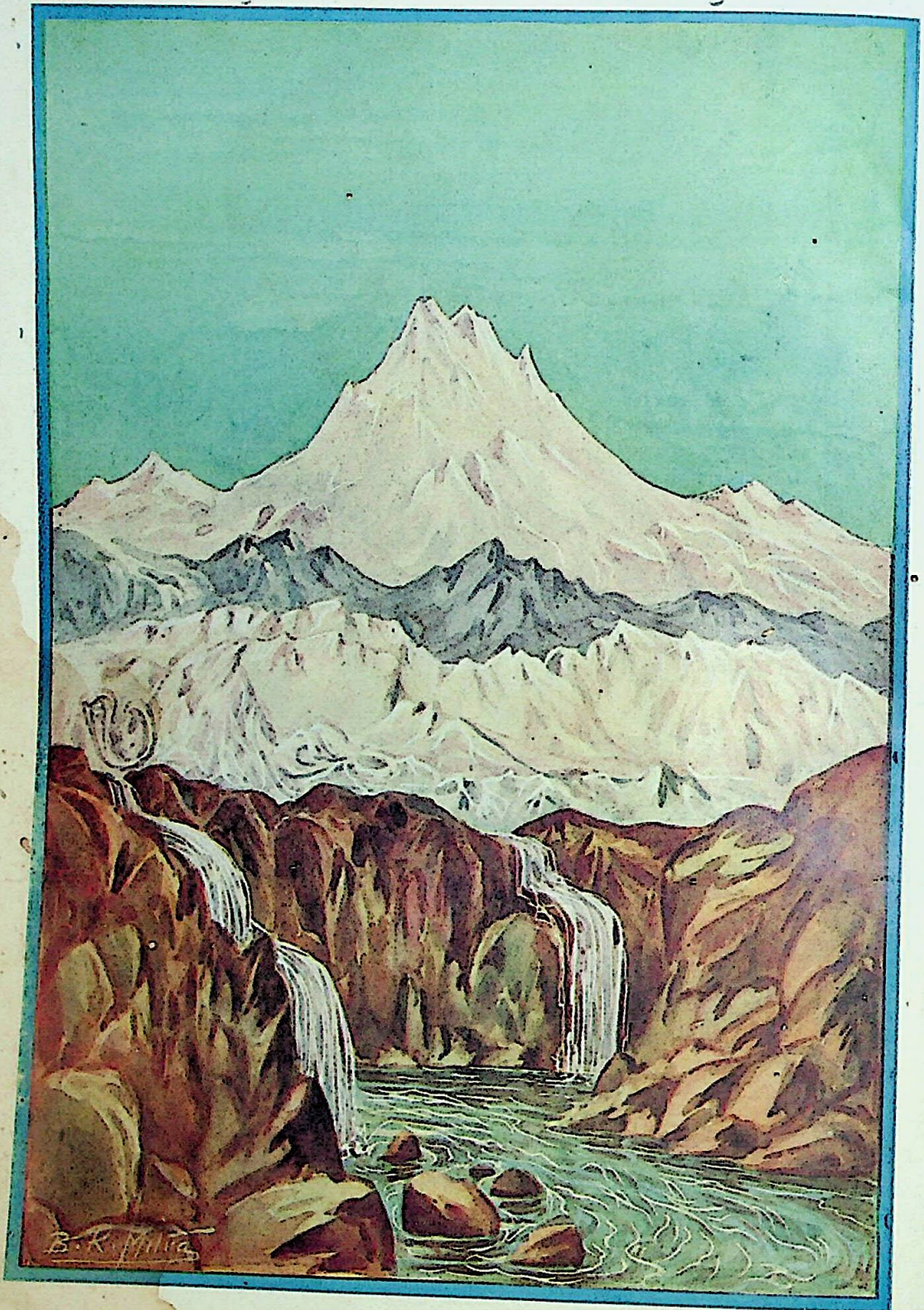
हिमालयमें छिपे भगवान् शङ्कर

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

कल्याण
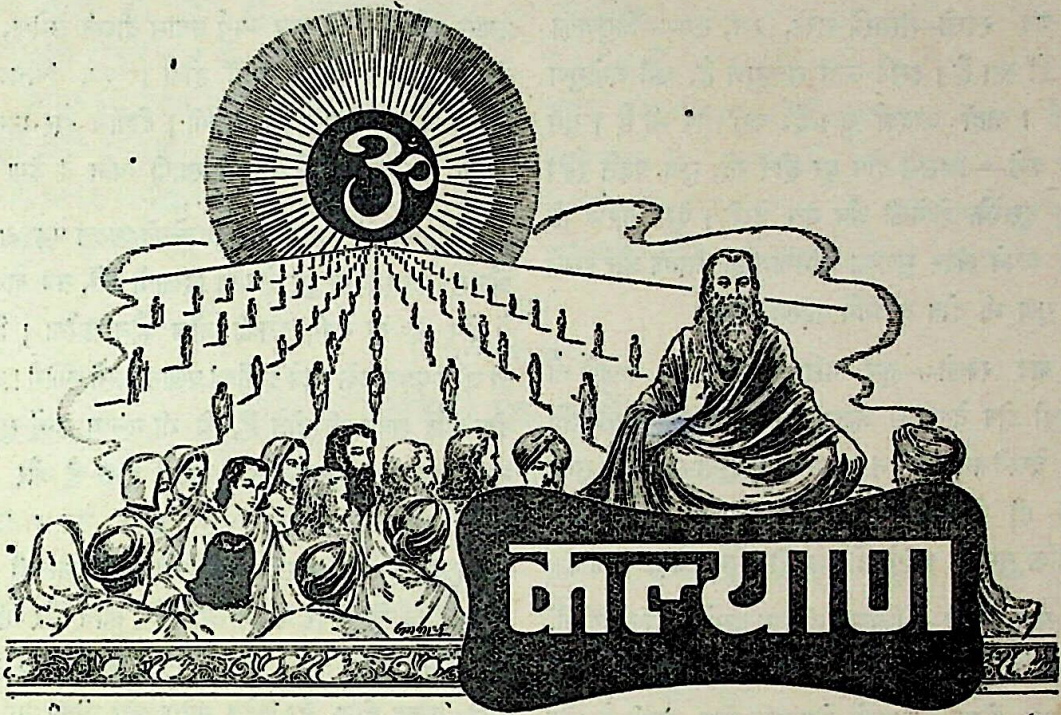
पिबन्ति ये भगवत आत्मनः सतां कथामृतं श्रवणपुटेषु सम्भृतम् ।
पुनन्ति ते विषयविदूषिताशयं व्रजन्ति तच्चरणसरोरुहान्तिकम् ॥

(श्रीमद्भागवत २ । २ । ३७)

वर्ष ३० } गोरखपुर, सौर श्रावण २०१३, जुलाई १९५६ { संख्या ७ पूर्ण संख्या ३५६

हिमालयमें छिपे भगवान् शङ्कर

हिमगिरिमें हिमसे आच्छादित हिमाकार शंकर अविकार ।
अमल धवल निज रूप समाहित त्रिगुणातीत विविध आकार ॥
जटाजूटयुत, भुजंग-भूषित, सिरसे बहती सुरसरि-धार ।
शायित लुकायित हिममें हर कर वर हिमातिथ्य स्वीकार ॥

याद रक्खो—संसारमें सत्त्व, रज, तम—त्रिगुणका खेल हो रहा है। इसमें जहाँ सत्त्वगुण है, वहाँ तमोगुण भी है। जहाँ आदर्श गुण है, वहाँ दोष भी है। तुम यही करो—जिससे दोष दूर होते रहें, गुण बढ़ते रहें। परंतु दूसरेके दोषोंकी ओर मत देखो। ऐसा करोगे तो तुम्हें अपने अंदर गुणका अभिमान हो जायगा और इससे वह गुण भी दोष बढ़ानेमें कारण होगा।

याद रक्खो—तुम यदि दूसरोंमें दोष देखोगे तो तुम्हारी दोष देखनेकी आदत पड़ जायगी। तुम्हारी दृष्टि दोष देखनेवाली ही बन जायगी, फिर तुम्हें सदा और सर्वत्र दोष ही दिखायी देंगे। बिना हुए ही दिखायी देंगे; क्योंकि तुम्हारी दृष्टिमें दोषका ही चश्मा चढ़ा रहेगा।

याद रक्खो—जितना ही तुम दूसरोंके दोष देखोगे, उतना ही दोषोंका चिन्तन होगा। जिसका बार-बार चिन्तन होता है, उसमें दोष-बुद्धि मिट जाती है और वह चीज धीरे-धीरे अपने अंदर आकर अपना घर कर लेती है। अभिप्राय यह कि जितना ही तुम दोष देखोगे, उतने ही अधिक दोष तुम्हारे अंदर आ जायँगे।

याद रक्खो—तुम्हारे अंदर जो पुराने दोष वर्तमान हैं—बार-बार दूसरोंके दोष देखनेसे वे तरुण, बलवान् और पुष्ट हो जायँगे एवं नये-नये दोषोंको बुला-बुलाकर अपनी शक्ति बढ़ाते रहेंगे।

याद रक्खो—जब सभीमें तुमको दोष दिखायी देंगे, तब अपने अंदरके दोषोंसे घृणा निकल जायगी। उनका अपनेमें रहना अखरेगा तो नहीं ही, वरं अनुकूल दीखने लगेगा। फिर, उनके रहनेमें गौरव-बुद्धि होने लगेगी।

याद रक्खो—जब सभीमें दोष देखोगे, तब मनमें यह निश्चय होने लगेगा कि ये दोष तो सभीमें रहते हैं, ये निकलनेकी चीज हैं ही नहीं। इनके निकालनेका प्रयास व्यर्थ है। यों जब व्यर्थ प्रयास दीखने लगेगा, तब दोषोंके हटानेमें प्रवृत्ति नहीं होगी। एक विचित्र-सी निराशा और शिथिलता आ जायगी। दोषोंसे हार मानकर तुम्हारा मन उन्हें रहनेके लिये स्थायी स्थान दे देगा।

याद रक्खो—जब दोष देखनेकी आदत पड़ जायगी और सबमें हुए-बिना हुए दोष ही दिखायी देंगे, तब वास्तवमें दोष है या नहीं, इसकी जाँच कौन करेगा। बिना ही जाँच-पड़तालके पराये दोषोंका बखान करने लगोगे। अपने दोष यदि सच्चे भी होते हैं, तो भी मनुष्य उन्हें सुनना नहीं चाहता, उसे बहुत बुरा मालूम होता है और जब कोई किसीमें झूठे दोषोंका आरोप करके उनका प्रचार करता है, तब तो प्रायः मनुष्य उसे सहन कर ही नहीं सकता, वह विद्वेष-वैर मानने लगता है। क्रोध और हिंसा-तक कर बैठता है। अतः तुमसे लोगोंकी लड़ाइयाँ होंगी, कलह होगा, वैर-विद्वेष बढ़ेगा और जीवन नये-नये उपद्रवोंका तथा अशान्तिका क्रीड़ास्थल बन जायगा।

याद रक्खो—दोष देखने और दोष-दर्शनजनित उपद्रवोंसे ग्रस्त रहनेपर तुम्हारा पारमार्थिक साधन तो छूट ही जायगा, लौकिक शान्ति भी नहीं रहेगी और पारमार्थिक साधन छूटनेके समान दूसरी कोई हानि है ही नहीं। तुम रात-दिन जलोगे, आसुरी तथा राक्षसी भावोंके गुलाम होकर सदा संत्रस्त रहोगे। दुनियाँमें कहीं भलाई दीखेगी ही नहीं—संतों, महात्माओं और भगवान्‌में भी दोष दीखने लगेंगे, इससे जीवनका स्तर बहुत ही नीचे धरातलपर पहुँच जायगा।

याद रक्खो—यह मानव-जीवनकी बहुत बड़ी विफलता है—परम हानि है। इसलिये तुम किसीके भी दोष मत देखो, अपने दोष देखो और उनके लिये रोना, हताश होना छोड़कर वीरकी भाँति जूझकर उन्हें तुरंत निकाल दो।

याद रक्खो—तुम्हारी शक्ति अपार है। तुम अनन्त-शक्ति आत्मा हो, चेतन हो, परमात्माके अंश हो। मन-इन्द्रियाँ तुम्हारे दास हैं—तुम अपने आत्म-स्वरूपको पहचानकर इनपर नियन्त्रण कर लोगे तो ये तुरंत तुम्हारे वशमें हो जायँगे। सारे दोष—जो इनके द्वारा ही होते हैं, डरकर भाग जायँगे। तुम परमात्माकी ओर सहज ही अग्रसर होओगे और अन्तमें उनको पाकर निहाल हो जाओ। दूसरोंके दोष तो कभी देखो ही मत। हो सके तो गुणोंका चिन्तन भी मत करो; क्योंकि गुण-चिन्तनसे राग होता है और दोष-चिन्तनसे द्वेष। राग भी बन्धन-कारक और पतनकारी ही है। अतएव प्रयत्नपूर्वक केवल परमात्माका ही चिन्तन करो, उन्हींका मनन करो और, जगत्के पदार्थोंका चिन्तन, जो आवश्यक हो, केवल परमात्माकी प्रीति तथा सेवाके लिये ही करो।

'शिव'

ज्ञानकी सप्त भूमिकाएँ

(लेखक—आत्मलीन स्वामीजी श्रीकृष्णानन्दजी सरस्वती)

[गताङ्कसे आगे]

ज्ञान-भूमिकाकी महिमा—हे पापरहित ! सप्त पदवाली ज्ञान-भूमिको सुन, इसको जानकर पुनः मोह-कीचमें नहीं फँसेगा। मोक्ष और सत्यका अवबोध (ज्ञान) पर्यायवाची शब्द हैं। जिसको सत्यका ज्ञान हो गया, वह फिर जन्म नहीं लेता। इन भूमिकाओंमें (के आधारपर अथवा साधनद्वारा) मुक्ति स्थित है। जिसके होनेपर पुनः शोक नहीं करता (योग-वाशिष्ठ ३, १, ८, १, ४; महा० ३, ५, २१, २३, २६)।

ज्ञान-भूमिकाके नाम—(१) प्रथम ज्ञान-भूमिकाका नाम शुभ इच्छा (जिज्ञासा) है। (२) विचारणा (३) तनुमानसी (४) सत्त्वापत्ति (५) असंसक्ति (६) पदार्थाभावनी (७) तुर्यगा (योग वा० ३। ११८। ५-६)

(१) अधिकारी (२) श्रवणात्मिका (३) मनन-प्राया (४) निदिध्यास (५) साक्षात्कार (६) परिणति (जीव-ब्रह्म-एकत्वकी वृत्तिपरिणामा) (७) पराकाष्ठा तुर्या (बोधसार)।

भूमिकाके फल—(१) पहिली भूमिकामें विद्यार्थी होता है। दूसरीमें पदार्थका ज्ञान। तीसरीमें श्रुत अर्थमें संशयरहित (श्रुत अर्थके युक्तिद्वारा अनुसंधानसे)। चतुर्थमें पण्डित (सजातीय प्रत्ययकी अनुवृत्ति तथा विजातीय प्रत्ययके तिरस्कार-द्वारा विपरीतभावनाकी निवृत्तिसे समस्त पदार्थोंमें समबुद्धि)। पाँचवीं अनुभूति-प्राप्ति—जीवात्माके एकत्वकी। छटीं भूमानन्दसे घूर्णित—व्याप्त होता है। आनन्दका आस्वादन करता है। सातवीं सहजानन्दवान् होता है। आठवीं तुर्यातीत इससे भी परे है तुर्याभूमिसे अस्पृष्ट तत्त्व—(बोधसार)।

सप्त भूमिकाओंके लक्षण—प्रथम भूमिका शुभेच्छा, जिज्ञासा, मुमुक्षा-अधिकारी (मैं तत्त्वको न जानते हुए तूष्णी—चुपचाप क्यों बैठा हूँ) मुझे शास्त्र तथा आचार्यसे वह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। मैं मूढ़ अज्ञानी क्यों बना हूँ। मुझे सज्जनोंसे (श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानियोंसे) शास्त्रद्वारा तत्त्वको जानना चाहिये। ऐसे संसारमें वैराग्यपूर्वक (ज्ञानकी) इच्छाको विद्वान् शुभेच्छा कहते हैं। वराहोप० ४, २, ३ सर्व? वेदान्तसंग्रह ९४१; योगवा० ३। ११८। ८ (अनेक जन्मोंके सुकृत-परिपाकसे प्राप्त सज्जन-सङ्गतिसे निष्काम-धी, अनन्तर आपाततः यह जानकर कि ब्रह्म सत्य है, उससे भिन्न सब मिथ्या है। तब उसको ब्रह्मातिरिक्त विषयोंमें वमन, विष्ठाके समान वैराग्य होता है, तब शास्त्र-श्रवण लक्षणवाली प्रथम भूमिका प्राप्त होती है। तब मन, कर्म और वचनके शम-दम ज्ञान-विज्ञानसम्पन्न सज्जनोंकी शरणमें जाकर सेवा आदि अनुकूल धन आदि लाकर उनकी सेवा करता है। उनके मुखसे अध्यात्म शास्त्रोंको श्रवण करता है। (योगवा० ६। १। १२६) तब वह प्रथम भूमिकाको प्राप्त होता है, जब इस प्रकार संसार-समुद्रको पार करनेके लिये विचार करता है। इससे भिन्न, शेष उक्त साधन-चतुष्टयादि सम्पत्तिहीन अध्यात्म-ग्रन्थमें आसक्त होनेपर भी अनधिकारी होनेसे स्वार्थी वञ्चक है। (अक्ष्युप० २, ४)।

मुण्डक १, २, १२—कर्मद्वारा प्राप्त लोकोंकी परीक्षा करके ब्राह्मण (विचारवान्) निर्वेदको प्राप्त होता है, क्योंकि अकृत—(ब्रह्म), कृत (कर्म) से प्राप्त नहीं होता। इसलिये उस ब्रह्मके ज्ञानके लिये समिधा हाथमें लेकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुके पास जाय।

मुमुक्षा उपाय—निष्काम उपासना तथा कर्म चित्त-शुद्धिद्वारा समुद्रकी दो चञ्चल लहरोंके मध्यमें उनके थपेड़ोंसे तंग आकर जैसे अपने सिरको भीतर प्रवेश कराता है, ऐसे ही अनेक जन्मोंमें जन्म-मरण आदि अनन्त दुःखोंसे त्रासित होनेपर मनुष्यको आत्मानात्मविवेक होता है। (योगवा० ६८। १२६। ४।)।

मुमुक्षालक्षण—मेरा मोक्ष हो, संसारका दर्शन न हो—ऐसी दृढ़ भावना, पुण्यक्षेत्र तथा मोक्षधर्मोंमें रुचि, काम्य-धर्ममें अश्रद्धा (बोधसार १७)।

द्वितीय भूमिका-विचारणा—शास्त्र तथा सज्जनोंका संग करके तथा वैराग्य-अभ्यासपूर्वक श्रवण-मननरूप सदाचारमें जो प्रवृत्ति है; इसको विचारणा कहते हैं। (योगवा० ३, ११८, ९; सर्व० सं० ९४२; वराहो० ४, २, ४; अक्ष्युप० २, महा० ३; ५, २८)।

श्रुति, स्मृति, सदाचार, धारणा, ध्यान कर्मसाध्य समाधि तथा यम आदि साधन जिस योगशास्त्रके विषय हैं, उसकी अनुष्ठान तथा अनुष्ठानरूप फलवाली व्याख्यासे जो प्रसिद्ध है तथा आत्मतत्त्वानुभव तथा उपदेशमें कुशल होनेसे जो श्रेष्ठ है। अर्थात् ऐसे श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरुकी शरणमें जाते हैं।

(व्याकरण आदि अङ्गोंका ज्ञाता) पद तथा (वाच्य, लक्ष्य आदि रूप) अर्थोंके (लक्षण आदि) प्रविभागका जाननेवाला, गुरुमुखसे जानकर कार्य (साध्य-कर्मकाण्डका अर्थ) अकार्य (सिद्ध ब्रह्मकाण्डके अर्थ) के निर्णयको स्पष्ट जानता है। जैसे गृहका पति गृहको जानता हो, मद, अभिमान, मात्सर्य, मोह, लोभ, ज्यादतीको लोकमर्यादा अनुसार बाहरसे धारण करनेपर भी शनैः-शनैः थोड़ा-थोड़ा त्यागता रहता है। जैसे सर्प त्वचाको।

यह सत्य (त्रिकाल बाधरहित) है, यह (प्रकृति-विकृति सत्से भिन्न) मिथ्या है, यह चैत्य (चेतनका विषय) है, तथा यह चित् असंग कूटस्थ स्वरूप है। यह (देश-काल-वस्तु-परिच्छेदरहित) ब्रह्म है। यह (असम्भवको सम्भव करनेवाली) माया है। इनके परस्पर भेदको साक्षात् अनुभव करना, यह विचारका लक्षण है। इस संसारका आधार क्या है, कैसे लीन होता है। ईश्वर, जीव, मुक्ति, बन्धन, द्वैत, अद्वैत क्या है। नित्यानित्यविवेकके द्वारा नित्य वस्तुको सत्य तथा अनित्यको तुच्छ समझना। निरन्तर उपर्युक्त ब्रह्मविचार मनसे करना प्रौढ़ विचारणाका लक्षण है। (बोधसार ६)

तृतीय भूमिका तनुमानसा—विचारणा और शुभेच्छा (अर्थात् साधन-चतुष्टय-सम्पत्ति आदिपूर्वक श्रवण तथा मनन) से युक्त निदिध्यासनसे इन्द्रियोंकी तथा मनकी उनके विषय शब्दादिमें आसक्ति (ग्रहण करना) रूपी तनुता (सविकल्प समाधि) को तनुमानसा कहते हैं। योगवा० ३, ११८, १०, तृतीय भूमिकाको योगवासिष्ठ ६७, १२६, १९ तथा अक्षि उ० १५ में 'असंग भूमि' कहा है। इसके उपाय—ग्राममें बहुत विक्षेप होनेसे समाधि-अभ्यासके लिये वनवास तथा असंग सुखकी सौम्यतासे नीतिमान् समय व्यतीत करता है। इस प्रकार तृतीय भूमिकामें अपने आत्माको अनुभव करता है।

असंगताके दो भेद हैं—

> द्विविधोऽयमसंसंगाः सामान्यः श्रेष्ठ एव च।
> नाहं कर्ता च भोक्ता च न बाध्यो न च बाधकः॥

दो प्रकार के असंग हैं—

(१) सामान्य—पूर्व भूमिकाओंमें भी जो पाया जाता है। मैं न (अपने देहकी क्रियाका) कर्ता हूँ न उसके फलका भोक्ता हूँ अर्थात् उदासीन हूँ। दूसरेकी (क्रिया तथा फलका) न बाध्य हूँ न बाधक—अर्थात् उनसे उदासीन हूँ इस निश्चयसे दृश्य पदार्थोंमें अनासक्तिको सामान्य असंग कहते हैं।

सामान्य असंगकी व्याख्या—(प्राप्त होनेवाला) सुख तथा दुःख पूर्वकर्मनिर्मित है और ईश्वरीय नियमसे प्राप्त होता है। इन दोनों पक्षोंमें मैं कर्ता कैसे हूँ? भोगमें अनास्थाके हेतु—भोग तो अभोग अथवा महारोग है; क्योंकि अन्तमें इनमें दुःख होता है। लौकिक सम्पदा वास्तवमें परम आपदा है। संयोगमें वियोग छिपा है और अर्थसंग्रह (deposit) बुद्धिकी व्याधि है।

श्रेष्ठ असंग—काल सर्वभावोंको ग्रास करनेके लिये सदा उद्यत है। श्रवण आदिकी सहायतासे (तत्त्वमसि आदि महावाक्योंके अर्थमें संलग्न चित्तवाला, भावोंमें अनास्थाकी जो निरन्तर भावना करता है—इसको सामान्य असंग कहते हैं। इस क्रमसे योगाभ्यास मार्ग तथा महात्माओंके सत्संगसे

श्रवण-मननात्मक आत्मविचारकी मनमें आवृत्तिसे तथा कुसंगके त्यागसे, पौरुष-प्रयत्नद्वारा निरन्तर अभ्याससे, प्रमाण-प्रमेय-विषयक दोनों असम्भावनाओंके निराससे) आत्मवस्तुमें करामलकवत् दृढ विश्वास करना कि आत्मतत्त्व संसार-समुद्रको पार करनेका परम कारण है। ऐसे मैं कर्ता नहीं हूँ किंतु ईश्वर ही कर्ता है। पूर्व अथवा क्रियमाण कर्म मेरे नहीं हैं। इस निरास (निषेध-अभाव) तथा इसके प्रति-योगि आदि शब्दार्थभावनाको भी दूर करके वाक्, मन आदि चेष्टासे रहित निदिध्यासन परिपाक-फलरूप निर्विकल्प समाधिमें स्थिर होनेको श्रेष्ठ असंग कहते हैं।

तृतीय भूमिका-(बोधसार) अन्धकारमय गृहमें चिरकालतक देखनेसे जैसे सूक्ष्म पदार्थ दीखता है ऐसे ही चिरकालके अभ्याससे अद्वय तत्त्व ब्रह्मात्मा अनुभव होने लगता है। दिन-रात्रि आयु व्यतीत हो रही है, मैं कब आत्मनिष्ठामें स्थित हूँगा। जहाँ मोह बाधा नहीं करता। अनिषिद्ध भोग भी जब यदृच्छा अपने-आप विना यत्नके प्राप्त हों, तो निषिद्ध समान देखता है। बहिर्मुख जनकी स्तुतिसे ऐसे लजाता है जैसे निन्दासे, और परमार्थी जनकी स्तुतिसे प्रसाद मानता है। (बो० सा० २, ५, ७, ८)

चतुर्थ भूमिका सत्त्वापत्ति-पूर्वकी तीन भूमिकाओंके अभ्याससे, बाह्य विषयमें संस्कारके नाशसे, चित्तकी आत्यन्तिकी विरतिकी स्थिरतासे, (माया और उसके कार्यरूप अवस्थात्रयरहित) सर्वाधिष्ठान सन्मात्र शुद्धात्मामें चित्तकी निर्विकल्परूप स्थितिको सत्त्वापत्ति कहते हैं। ब्रह्मात्माके साक्षात्कारसे जगत्-मिथ्यात्वका ज्ञान प्रत्यक्ष होता है, इसलिये इसको स्वप्न कहते हैं। (योगवा० ३, ११८, ११; महो० ३, ३०) ज्ञानविरोधी द्वैतवासनाजाल अथवा असम्भावना विपरीतभावना दोषरूप अज्ञानके नाश होनेपर विना प्रतिबन्धके महावाक्यसे अपरोक्ष अखण्डाकार ज्ञानके पूर्णचन्द्र समान उदय होनेपर मूलाज्ञानके नाशसे समाहित चित्त योगकी चतुर्थ भूमिकाको प्राप्त होता है और विभागरहित अनादि, अनन्त, एकरस आनन्द सर्वत्र देखता है। (अक्ष्युप० ३०, योगवा० ६, १, १२६, ५८, ५९)। अद्वैतके स्थिर होनेपर तथा द्वैतके शान्त होनेपर चतुर्थ भूमिकावाला लोकको स्वप्न-समान देखता है। तृतीय भूमिका जाग्रत् तथा चतुर्थ भूमिका स्वप्न कहलाती है। तृतीय भूमिकाके अभ्याससे रज तथा तमके नाश हो जानेसे, यह निदिध्यासनरूप चतुर्थ भूमिका सत्त्वापत्ति है।

लक्षण-एकान्तमें मुक्तिगाथाका गान, रुदन, रोमाञ्च, कण्ठ-गद्गद मैं नित्य शुद्ध हूँ, मुझमें अज्ञान तथा बन्धन कहाँ हैं, ऐसा चमत्कार ! उपनिषद्-कथाको निज कथाके समान सुनता है। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धरूप प्रिय इष्ट विषयोंमें पूर्वसमान हर्षित नहीं होता; क्योंकि सात्त्विक आनन्दको इसने पा लिया है। जो जाग्रत्में जगत्को स्वप्न-समान उदासीनतासे देखता है—यह सत्त्वापत्तिके परिपाकका लक्षण है। (बोधसार-४, ६, ७, १२, १४)

पञ्चम भूमिका असंसक्ति-पूर्वकी चार भूमिकाओंके अभ्याससे बाह्य-आभ्यन्तर द्वैतरूप विषयों तथा उनके संस्कारोंके नितान्त संग-स्पर्शसे रहित निरूढ़ सत्त्व निरतिशयानन्द ब्रह्मात्मभाव साक्षात्काररूप चमत्कारवाली पाँचवीं भूमिका असंसक्ति कहलाती है; क्योंकि इसमें अविद्या तथा इसके कार्यका संसर्ग नहीं रहता। (महोप० ३१ योगवा० ३, ११८, १२)

शरद्-अभ्र-अंशके विलयसे जैसे शेष आकाशमात्र रह जाता है, ऐसे ही चित्तके विलयसे पाँचवीं भूमिमें शुद्ध चिन्मात्र सत्ता ही शेष रह जाती है। सुषुप्ति नामक पाँचवीं भूमिकामें सम्पूर्ण विशेष अंशके शान्त हो जानेसे अद्वैतमात्रमें स्थितिलाभ करता है। द्वैत निर्भासके गलित होनेपर स्वरूपाविर्भूत होता है, प्रज्ञानघनकी साम्यतासे यह सुषुप्ति कहलाती है। बहिर्वृत्ति होनेपर भी अन्तर्मुख होता है। परिश्रान्त-सा निद्रालु-समान दीखता है। (अक्षि उप० ३२–३६। योगवा० ६, १, १२६, ६१–६४) साक्षात्कारका नवाङ्कुर इसमें होता है। भूताविष्टके समान वर्णाश्रमविधिक्रम-को पूर्वसंस्कारोंसे प्रेरित करता है और अहंकारशून्य होनेसे नहीं भी करता है। जैसे गोल पत्थर पर्वतके शिखरसे गिरनेपर निश्चित टूटते ही हैं, ठहर नहीं सकते, ऐसे ही इसके विकार। प्रिय वचनसे प्रसन्न नहीं होता, विरुद्ध वचनसे खिन्न नहीं होता। सम्पूर्ण कार्यजगत्को भूल जाता है, अपने आत्मामें रमण करता है। जिस ज्ञानीके साक्षिभावसे लौकिक-वैदिक प्रमाण होते हैं, उस स्वतःप्रमाणभूत निरपेक्षप्रमाण ज्ञानीमें क्या संदेह। विधिकी दासताको त्यागकर अकर्तृत्व भावको प्राप्त हो जाता है। अकिञ्चन भावको प्राप्त होनेसे कुछ चिन्तन नहीं करता। भानुके आतप लगनेपर हिमाचलकी शिलाके समान जो बाहर-भीतर पूर्ण है, शीतलताको नहीं छोड़ता। स्फटिक यदि अपने स्फटिकभावको जाने, जल जलभावको, गगन गगनभावको ऐसी दशा पाँचवीं भूमिकामें

ज्ञानीकी होती है । अर्थात् स्फटिकके समान शुद्ध, जलके समान शीतल रसमय, तथा गगनके समान व्यापक अपनेको जानता है । वास्तवमें इसका दृष्टान्त नहीं है, क्योंकि ये सब जड हैं। (बोधसार ५-११)

षष्ठ भूमिका पदार्थाभावनी-पाँच भूमिकाओंके अभ्याससे केवल आत्मामें रमण होनेसे बाह्य तथा आभ्यन्तर पदार्थोंकी अभाव-भावनाके कारण, पर-प्रयुक्त प्रयत्नसे देह-यात्रा सिद्ध होनेपर पदार्थाभाव नामवाली छठी भूमिका होती है। (महोप० ५, ३२, ३३ । यो० वा० ३, ११८, १३-१४) पाँचवीं भूमिमें अभ्यास करते रहनेसे स्वतः व्युत्थानकी वासनासे रहित छटी तुर्या नामवाली भूमिको क्रमशः प्राप्त होता है । जहाँ न सत् है न असत्, न अहंकृति न अनहंकृति । द्वैत तथ्य ऐक्यभावरहित केवल क्षीण मन रहता है । ग्रन्थिरहित, संदेहरहित, किसी प्रकारकी भावनासे रहित, जीवन्मुक्त, चित्रदीप समान अनिर्वाण, प्रारब्धके कारण शरीर धारण करनेपर भी निर्वाणको प्राप्त है । जैसे आकाशमें कुम्भ शून्य होता है, ऐसे ही वह भीतर-बाहर द्वैतसे शून्य है । जैसे समुद्रमें कुम्भ पूर्ण होता है, ऐसे ही वह भीतर-बाहर आनन्दसे पूर्ण है । वह किञ्चित् अपूर्व रूपको प्राप्त होता है अथवा किसी रूपको वास्तवमें प्राप्त नहीं होता । (अक्षि उप० २, ३७-३९ । यो० वा० ६, १, १२६, ६५-६८)

षष्ठ भूमिकाके अन्य नाम--घन-सुषुप्ति, महा-दीक्षा, महानिद्रा—आनन्दघूर्णिता—आनन्दमात्रस्फूर्ति, पदार्थ (विस्मृति) परिणिति (आत्मामें परिणाम हो) ।

लक्षण—शिविका (पालकी) में आरूढ़ राजा जैसे सोये हुए चलता है ऐसे ही वह निजानन्दमें सोये हुए चलता है । (बोधसार)

सप्तम भूमिका-तुर्या--पूर्व छः भूमिकाके अभ्याससे आत्मातिरिक्त भेदके ग्रहण न होनेसे जो केवल आत्मभावमें निष्ठा है उसको तुर्यगा गति—चतुर्थ गति कहते हैं; क्योंकि यह चार जीवन्मुक्त सिद्ध-ज्ञानकी भूमियोंमें चतुर्थ है । चतुर्थ भूमिमें साक्षात्कार होता है और इस भूमिवाला ब्रह्मवित् कहलाता है। सप्तम भूमिवाला ब्रह्मविद्वरिष्ठ कहलाता है । इससे परे विदेह-मुक्तिका विषय है । तुर्यातीत अर्थात् ब्रह्म है । इसकी भूमिकामें गणना नहीं है। (महोप० ५, ३४, ३५ । योगवा० ३, ११८, १५) । षष्ठ भूमिकामें दृढ़ स्थिति होनेपर सप्तम भूमिकाको प्राप्त होता है, जिसको विदेहमुक्ति कहते हैं । यह वाणीका विषय नहीं । यह परम शान्त है, यह भूमियोंकी सीमा है । कोई इसे शिव कहते हैं, कोई ब्रह्म, कोई इसे प्रकृति-पुरुष-विवेक कहते हैं, अन्य इसे निज कल्पित भेदोंसे वर्णित करते हैं । इसका व्यपदेश (कथन) नहीं हो सकता । परंतु फिर भी किसी प्रकार इसका वर्णन किया जाता है । (अक्षिउ० ३, २४, ४१; योगवा० ६, १, १२६, ७०-७२) ।

अन्य नाम--महाकक्षा, गूढ़ सुषुप्ति, योगनिद्रा, सहज अनुत्तरस्वरूप स्थिति । सत्त्व, रज तथा तमरूप गुणोंके दुर्लङ्घ्य मार्गको जिस सप्तम भूमिकावालेने पार किया है, उसका कैसे वर्णन हो सकता है । उसकी वाणी मौनमयी है, गति स्थितिरूपा है, जाग्रत् निद्रारूप है, निद्रा बोधरूप है, रात्रि दिनरूप है, दिन रात्रिरूप है, कर्म ब्रह्ममय है, जगत् सुख-रूप है, किञ्चित् अकिञ्चित्रूप है । वाचक, वाच्य तथा वचनरूप भेद प्रपञ्चके मिथ्या होनेसे, परम तत्त्व मौन रूप होनेसे, वह उस तत्त्वको मौनद्वारा व्याख्यान करता है। वाग्-अगोचर तत्त्वका व्याख्यान मौनरूप ही होता है । गमन भी पारमार्थिक न होनेसे गति स्थितिरूपा है । निद्रावस्थामें त्रिपुटी विलीन होनेसे जागरण है; उसके जागरणमें ही त्रिपुटी विलय होनेसे उसका जागरण ही निद्रारूप है और निद्रा बोधरूपाका तात्पर्य है,निद्रामें जाग्रत् समान त्रिपुटीके भावसे इसको जागरण कहा गया है । मैं सुखसे सोया, मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं रहा, ऐसे सुख तथा अज्ञानका ज्ञान तथा ज्ञाता साक्षिरूप त्रिपुटी निद्रामें रहती है । उसकी रात्रि दिनरूप है, इसका तात्पर्य—रात्रि अन्धकारमय होनेपर भी इस अंध-कार, अप्रकाशका प्रकाशक भी सप्तम भूमिका आरूढ़ अखण्ड चिन्मात्र होनेसे दिन कहा गया है और उसका दिन रात्रि-रूप होता है, क्योंकि जगत् सब उसकी अपेक्षासे मिथ्या अभावरूप है (गीता २, ६९) । उसका कर्म ब्रह्ममय है; क्योंकि उसकी दृष्टिमें कर्ता आदि त्रिपुटी मिथ्या है । दुःख-मय जगत् ब्रह्मरूप होनेसे सुखरूप है । जो कुछ जगत्में दृश्य है वह उसके लिये कुछ नहीं है, अदृश्य आत्मा है । 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' (छा० ३, १४, १)

भूमिका सामान्य विचार

जाग्रत् आदि अवस्थाभेदसे भूमिकाओंका विचार—प्रथम तीन भूमियाँ—शुभेच्छा आदि तीन भूमियाँ भेद तथा अभेदसे युक्त कही जाती हैं; क्योंकि किसी शब्द आदि प्रमाणद्वारा अभेद-ज्ञान होता है और अन्य प्रमाणोंद्वारा पूर्ववत् भेद ही जँचता है । जैसे पूर्व कहा गया है, इन भूमियोंमें प्रमाणविरोध रहता है और इसका

परिहार करना ही इन भूमियोंका लक्ष्य है। किसी अंशमें अभेद-भावना होनेसे ये ज्ञानभूमि कहलाती हैं। पूर्व-समान भेद-बुद्धि जाग्रत् रहनेसे इनको जगत् जाग्रत् कहा जाता है। (वराहो० ४। ११; योगवा० ६,१,१२०,७; सर्ववेदान्त-सि० संग्रह ९५९)

पूर्वावस्थात्रयं तत्र जाग्रदित्येव संस्थितम्।
(महो० ८७)

पूर्वकी तीन अवस्था जाग्रत् है, ऐसा निर्णय है। (अक्षि उ० ३२; योगवा० ६,१२६,६१) तीन भूमिकाएँ विद्याका साधन हैं, विद्याकोटिमें इनकी गणना नहीं है। इन तीन भूमियोंमें भेदविषयक सत्य बुद्धि पूर्णतया निवृत्त नहीं होती, इसलिये इसे जाग्रत् कहते हैं। (जीवन्मुक्तिविवेक, पृष्ठ ३४६)

अद्वैते स्थैर्यमायाते द्वैते च प्रशमं गते।
पश्यन्ति स्वप्नवल्लोकं तुर्यभूमिसुयोगतः॥
(वराहो० १२। सर्व सि०संग्र०९६-६१)

चतुर्थ भूमिकामें अद्वैतके स्थिर होनेपर तथा द्वैतके शान्त होनेपर लोकको स्वप्नसमान देखता है। चतुर्थको स्वप्न कहते हैं; क्योंकि इसमें स्वप्नसमान जगत् भासता है।

पञ्चम भूमिकाको सुषुप्ति तथा षष्ठको गाढ़ सुषुप्ति कहा है। (अक्षि० ३४; वराह० १५; बोधसार)

सप्तम भूमिकाको पूर्वोक्त जाग्रत् आदि तीन अवस्थाओंके कारण तुर्या कहते हैं।

साधक-सिद्धकी दृष्टि भूमिका विचार (जीवन्मुक्तिविवेक पृष्ठ ३४६-३४७)

प्रथम तीन—साधनावस्था
चतुर्थ—ब्रह्मवित्
पञ्चम—ब्रह्मविद्वर
षष्ठ—ब्रह्मविद्वरीयान्
सप्तम—ब्रह्मविद्वरिष्ठ

भूमिका शास्त्रार्थ-निर्णय—(बोधसार पृ०२९६) तीन भूमिकाएँ जाग्रत् तथा चतुर्थ स्वप्न कहलाती है, यह तारतम्यसे योगियोंकी पाँचवीं, छटी तथा सातवीं तीन प्रकारकी सिद्धावस्था है। इनके दृष्टान्त आगे दिये जाते हैं। जैसे सुषुप्तिकी प्रथम, घन तथा गाढ़ अवस्थामें समान सुख होता है। ऐसे ही ५ से ७ भूमिकामें ब्रह्मानन्द समान होता है। अभ्यासके तारतम्यसे चिरस्थितिमें तारतम्य होनेपर भी अपरोक्षानुभूतिमें यत्किञ्चित् भी तारतम्य नहीं होता। जबतक मिश्रीका स्वाद नहीं लिया, तबतक मनुष्य उसके स्वादसे अनभिज्ञ है, जब एक बार उसे खा लिया फिर उसका स्वाद अज्ञात नहीं होता। ऐसे ही यदि अनुभूति एक बार उत्पन्न हो गयी तो उसकी उत्पत्तिका अभाव नहीं होता। फिर भ्रान्ति नहीं हो सकती। चतुर्थ भूमिकामें बिजलीके समान क्षणिक अनुभव होता है, पाँचवींमें वायुसे चञ्चल दीपके समान, षष्ठमें निश्चल दीपके समान, सप्तममें सूर्य प्रभासमान दीर्घकालीन उदयास्तरहित (दिन, पक्ष, ऋतु, वर्ष आदिमें) ५ से ७ भूमिकावालेकी पुनरावृत्ति नहीं होती। पूर्व तीन भूमिकामें जो देह त्यागते हैं, वे योगभ्रष्ट पुनः देह प्राप्तकर ब्रह्माभ्यास करते हैं। कुछ सनकादिके समान पाँचवींमें ही आस्था कर लेते हैं, कुछ बृहस्पति आदिके समान षष्ठमें और कुछ सातवींमें। इन सबको मोक्षसुख सम होता है। अर्थात् कई स्वतः प्रपञ्चमें सत्यबुद्धि करनेसे व्यवहार करते हैं, कई दूसरोंके उद्बोधन-द्वारा और कई स्वपर-प्रयत्नसे कभी प्रवृत्ति नहीं करते। इन सबकी विदेहमुक्ति समान है।

अवस्था-व्यवस्था—(बोधसार पृ० ३०५)

जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, मूढ़ समाधि, मूर्च्छा, मृत्यु तथा तुर्या—ये सात अवस्थाएँ कही जाती हैं। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्तिको सब जानते हैं। मूढ़ समाधि भव-प्रत्ययवाली असम्प्रज्ञात-समाधि है, जिसमें अनात्मपदार्थका ध्यान करते-करते वृत्तिके लय होनेपर एक जड सुषुप्तिके समान अवस्था प्राप्त होती है। मूर्च्छा और मृत्यु भी सब जानते हैं। तुर्याका निरूपण किया जायगा।

वेदान्त-सम्प्रदायानुसार निदिध्यासनकी दृढ़तासे अखण्ड-चिन्मात्र परमात्मामें चित्तके लयको तुर्या कहते हैं। इसमें ब्रह्मके साक्षात्कारसे मूलाविद्या नाश हो जाती है।

प्रश्न—स्वप्न-जागरणमें संसाराडम्बर (घटाटोप) तुल्य होता है—इनमें भेद कैसे ?

उत्तर—पहले विस्मृति और बोधके भेदको समझो। विस्मृतिमें वह पदार्थ भासता नहीं है; परंतु यह मिथ्या है इस निश्चयको बोध कहते हैं, जाग्रत्के पश्चात् जब स्वप्न आता है, तब जाग्रत्की विस्मृतिमात्रसे स्वप्नदर्शन होता है, ऐसी बुद्धि स्वप्नसमय नहीं होती। परंतु जब स्वप्नके अनन्तर जाग्रत् होती है, तब यह बोध होता है कि स्वप्नद्रष्टा तथा

स्वप्नावस्था मिथ्या है। स्वप्नमें जैसे जाग्रत्की विस्मृति होती है, ऐसे जाग्रत्में स्वप्नकी विस्मृति नहीं होती, प्रत्युत जाग्रत्में स्वप्नका स्मरण होता है और स्वप्नमें मिथ्याबुद्धि होती है।

प्रश्न—मूढ़ समाधि, मूर्च्छा, मृत्यु, सुषुप्ति तथा तुरीयामें तो दृश्य सृष्टि नहीं होती, उनमें क्या भेद होता है?

उत्तर—सिद्धिकी कामनासे जिन्होंने उग्र तप किया, उनके देहका भी विस्मरण हो गया, उसे कृमि, कीट आदिने खा लिया, यह न मूर्च्छा है, न रोग है, न मृत्यु; क्योंकि जीता है और सुषुप्तिके आनन्दसे भी रहित है, इसलिये सुषुप्ति नहीं है। स्वरूप-लागरहित मूढ़ता होनेसे तुरीया भी नहीं है। केवल दृश्य भान इनमें नहीं होता। इतनेमात्रसे कृतार्थता नहीं है। व्युत्थानके अनन्तर उनका संसार भी पूर्वसमान स्थिर होता है, जब आत्मदर्शन नहीं हुआ, तब संसार अबाधित ही रहता है। दृष्टान्त—स्वप्नमें जाग्रत्का विस्मरण होता है, इसका बाध नहीं होता है, इसलिये स्वप्नान्तर जाग्रत् पूर्व-समान स्थिर रहता है, परंतु जाग्रत्में स्वप्नका बाध हो जाता है, इसलिये यह मिथ्या भान होता है। दार्ष्टान्त—ऐसे ही मूढ़ समाधिमें सकल जगत्का विस्मरण हो जाता है, व्युत्थानानन्तर पूर्वसमान जाग्रत् अवस्थित रहता है। तुरीयामें विश्व बाधित हो जाता है इसलिये वह मिथ्या हो जाता है। व्युत्थान होनेपर हे पुत्र! मुनिको जाग्रत् मिथ्या ही भासता है, न कि वास्तव। जैसे कोई रज्जु सर्प देखकर अन्य देशमें चला गया, जब वह लौटकर आता है, वह उससे डरता है। परंतु यदि यह सर्प नहीं है—ऐसा जानकर देशान्तर जाता है तो जब लौटकर आता है, तो उससे डरता नहीं है। ऐसे ही मूढ़ समाधिसे जब सब संसारका विस्मरण हुआ, जब व्युत्थानको प्राप्त होता है, तब संसार-जन्य भय फिर होता है। यदि ज्ञान-समाधिसे संसारका विस्मरण होता है, जब व्युत्थान होता है तो जाग्रत् बाधित होनेसे भय नहीं मानता। यदि विस्मरणमात्रसे देहीकी मुक्ति होती तो सुषुप्ति नित्य होती है, मुक्त क्यों नहीं होता? इसलिये तुर्या इन सब अवस्थाओंमें उत्तम है। ब्रह्मकल्प-पर्यन्त यदि गरुड़ भी वेगसे जाय तो भी इसे प्राप्त नहीं कर सकता, यह दूर-से-दूर रहती है। यदि वेदान्तमें श्रद्धा है, और मुमुक्षा तीव्र है और ध्यान अभ्यास गाढ़ है, तो सर्वत्र तुर्या सुलभ है। मृत्यु, मूर्च्छा, सुषुप्ति तप नहीं है, इसलिये निष्फल है। मूढ़ समाधि उग्रतप होनेसे महान् फलदायक है। विद्वत्समाधि तो विद्या ही है, इसलिये यह मोक्षप्रद है। ये छः ही चित्तकी अवस्था हैं, न कि चिति—आत्माकी। चित्त अवस्थाको प्राप्त होता है, परंतु चिन्मात्र आत्मा अवस्थाका साक्षी है। अवस्थाओंकी इस व्यवस्थाकी यदि पुनः-पुनः भावना की जाय, तो अवस्थाओंका साक्षी साक्षात् प्रत्यक्ष होता है। (बोधसार)

अज्ञान-भूमिका (ज्ञानभूमिका ज्ञान उपयोगी हैं) (महोपनिषद् ५, २०; योगवा० ३, ११७, १; बोधसार)

भूमिका संख्या—अज्ञान-भूमिके ६ पाद हैं तथा ज्ञान-भूमिके भी ६ पाद हैं, इन भूमियोंके अवान्तर भेद बहुत-से हैं। स्वाभाविक प्रवृत्ति तथा भोगमें दृढ़ राग लक्षणवाला रसावेश अज्ञान-भूमिकाकी प्रतिष्ठा (स्थिरता) का हेतु है और साधनचतुष्टयसम्पन्नका दृढ़ मोक्ष लक्षणवाला श्रवण आदिरूप प्रयत्न ज्ञानभूमिकी प्रतिष्ठाका हेतु है। स्वरूपा-वस्थिति मुक्ति है और अहंबोध मुक्तिका नाश है। यह संक्षेपसे ज्ञान अज्ञानका लक्षण है। आभ्यन्तर अहंताके क्षीण होनेपर ब्रह्मभावद्वारा वृत्तिभेदके शान्त होनेपर तथा दोनों जगह निस्पन्द होनेपर अजड स्वप्रकाश (निष्प्रतियोगि ब्रह्मरूपमें) चित् है वह स्वरूपस्थिति है। चिन्मात्र उस स्वरूपस्थितिमें जो अज्ञानका अनादि आरोप है, उस अज्ञानकी ये भूमियाँ हैं।

(१) बीज-जाग्रत् (२) जाग्रत् (३) महाजाग्रत् (४) जाग्रत्-स्वप्न, (५) स्वप्न, (६) स्वप्न-जाग्रत् (७) सुषुप्ति—यह सात प्रकारका मोह है। फिर यह मोह अनेक प्रकारसे परस्पर मिश्रित होता है। प्रथम चेतन जो विशेषरहित होनेसे (आख्या) नामरहित हैं तथा (वास्तवमें) निर्मल है। जो अज्ञकी दृष्टिसे (प्राणधारण आदि क्रियारूप उपाधिसे) भविष्यमें होनेवाला चित्त तथा जीव आदि शब्द अर्थका भागी होता है (माया-सहित चैतन्यसे जो सृष्टि-समय चिदाभास होता है) वक्ष्यमाण जाग्रत् बीजभूत, जाग्रत् बीज कहलाता है (जिसका अधिष्ठाता प्राज्ञविभक्त विश्व है) यह जाग्रत्की नयी अवस्था है। नवप्रसूत बीजरूप कार्यसे जो यह स्वच्छ प्रत्यय होता है कि यह मैं हूँ अथवा यह मेरा है यह पूर्व न होनेसे जाग्रत् कहलाता है। यह वह है तथा मैं यह ब्राह्मण आदि हूँ, यह पीवर (स्थूल) प्रत्यय महाजाग्रत् कहलाता है। यह जन्मान्तर अथवा यहाँके संस्कारोंसे

उत्पन्न होता है। (अनभ्याससे) अरूढ़ अथवा (अभ्यासके कारण) रूढ़ सर्वथा तन्मयात्मक जाग्रत्का मनोराज्य 'जाग्रत् स्वप्न' कहलाता है। द्विचन्द्र, शुक्तिका रूप्य, मृगतृष्णा आदि भ्रम भी जाग्रत् स्वप्न अथवा 'स्वप्न स्वप्न' है। निद्राके मध्य अथवा अन्तमें निद्रा-काल अनुभूत अर्थविषयक जो यह प्रत्यक्ष होता है कि मैंने ऐसा अल्प कालमें देखा है, यह सत्य नहीं है, अज्ञानीका यह स्वप्न कहा जाता है। महाजाग्रत् अन्तर्गत स्थूल शरीरके कण्ठादि हृदयान्त नाड़ीप्रदेशमें होता है। जो स्वप्न जाग्रत्के समान अभिनिवेशसे अथवा स्थायी कल्पनाके कारण दृढ़ है। जैसे हरिश्चन्द्रका बारह वर्षका स्वप्न, महाजाग्रत्के समान है, जो दैवसे देहनाश होनेपर भी चलता रहता है, इसको 'स्वप्न-जाग्रत्' कहते हैं। छठी अवस्थाके त्यागसे जीवकी जो जड-स्थिति है, भविष्यत् दुःखकी बोधक वासना और कर्मोंसे सम्पन्न होती है उसे 'सुषुप्ति' कहते हैं। सुषुप्तिमें कारणमें लीन होनेसे जगत् संस्काररूपमें रहता है। अन्यथा पुनः इसका उद्भव न हो। इन अवस्थाओंकी नाना प्रकारकी संसारकी शाखाएँ हैं।

अज्ञान-भूमिका (बोधसार पृ० २०८)

अज्ञान-भूमिका सात हैं तथा ज्ञान-भूमिका भी सात हैं। (१) बीज-जाग्रत्, (२) जाग्रत्, (३) महाजाग्रत्, (४) जाग्रत्-स्वप्न, (५) स्वप्न, (६) स्वप्न-जाग्रत्, (७) सुषुप्ति। कुसूलमें स्थित बीजमें जैसे सम्पूर्ण तरु होता है, वैसे जिसमें सर्व विश्व स्थित है, परंतु व्यक्त नहीं हुआ, वहाँ जाग्रत् बीजरूपसे स्थित है, इसलिये बीजजाग्रत् कहलाता है। यह संसारकी प्रथम अवस्था है। इसको महामोह कहते हैं। इसीको अज्ञान कहते हैं। जो आत्मज्ञानसे लीन हो जाता है। कुसूलमें स्थित बीज जब क्षेत्रमें डाला जाता है और अंकुर निकलता है, इस अवस्थाको जाग्रत् कहते हैं। सांख्यवादी इसे महत्तत्त्व कहते हैं। वेदान्ती ईक्षण, सामान्य अहंकार, आनन्दमय कोश, साक्षी कहते हैं। सूक्ष्म अंकुरवत् व्यावहारिक विशेष अहंकृति महाजाग्रत् कहलाती है। ये तीन व्यष्टिकी अवस्था हैं। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति नामवाली जाग्रत् कहलाती है। जाग्रत्में जीव जब मनोराज्य करता है, यह जाग्रत् स्वप्न समान है, इसलिये जाग्रत्-स्वप्न कहलाता है। लोकप्रसिद्ध जो स्वप्न है, वह स्वप्न कहलाता है। जन्तुके जागरण तथा स्वप्नमें देखे अर्थका प्रत्यक्ष समान भासना संस्कारके कारण स्वप्न-जाग्रत् कहलाता है। इन छः अवस्थाओंके परित्यागसे सुषुप्ति होती है।

उपसंहार

इस प्रकार अज्ञान तथा ज्ञान-भूमिकाओंका विस्तार होता है, यही नामरूप संसारके दो मुख्य भेद हैं। नामरूप भेदमें यथार्थ बुद्धिका नाम ही अज्ञान है और नामरूप भेद मिथ्या है, इस बुद्धिका नाम ज्ञान है। सो अज्ञान-भूमिकाओंमें भेद-बुद्धिका क्रमशः विकास होता जाता है और ज्ञान-भूमिकाओंमें भेद-बुद्धिका क्रमशः बाध होता जाता है। ज्ञानकी प्रथम तीन भूमियाँ साधन-भूमियाँ हैं। इनमें भेद-बुद्धि तथा अभेद-बुद्धि अंशतः प्रमाणभेदसे बनी रहती है। चतुर्थमें अखण्ड चिन्मात्रके प्रत्यक्षसे भेदका सर्वथा बाध होता है; परंतु सत्ताभेदसे किस रूपमें भेद प्रतीत होता रहता है। चतुर्थमें व्यवहारकालमें जगत्-भेदकी सत्ता भासती है। पाँचवींमें प्रतीतिकालमें पृथक् सत्ता जगत्की रहती है। छठीमें प्रतीतिसे भिन्नरूपसे पदार्थका अभावमात्र भासता है। सातवींमें भेदप्रतीतिमात्रका ही अभाव होता है, केवल अखण्ड चिन्मात्रतत्त्व निज महिमामें प्रकाशता है। इन भूमिकाओंके अधिकारी, साधन तथा फलका भी निरूपण किया गया है। इस रहस्यको समझकर उचित अधिकार तथा साधनद्वारा ही फलकी सिद्धि हो सकती है, बिना साधन-चतुष्टयरूप अधिकारीकी सामग्रीके इन ज्ञानभूमिकाओंमें प्रवेश असम्भव है। अभेदरूप ज्ञानदृष्टिसे इन छः भूमिकाओंका जाग्रत् आदि चार अवस्थाओंमें ही समावेश है। यह निर्वचन सामान्य जाग्रत् आदिसे भिन्न है। प्रथम तीन भूमिकाओंमें ज्ञानदृष्टिसे भेदके किसी अंशमें जाग्रत् होनेसे ये तीन जाग्रत् कहलाती हैं। चतुर्थमें भेदके नितान्त बाध हो जानेसे स्वप्न कहलाती है और पाँचवीं तथा छठीमें भेद-प्रतीतिके विलीन होनेसे सुषुप्ति तथा गाढ़ सुषुप्ति कहलाती है और सातवीं तुर्या कहलाती है (पूर्वोक्त तीनकी अपेक्षासे चतुर्थ होनेसे)। अनात्मपदार्थमें संयमसे चित्तकी विलीन अवस्थाको जड-समाधि कहते हैं। इसमें केवल भेदकी विस्मृति होती है। इसका बाध नहीं होता, न अखण्डचिन्मात्रका स्वरूपतः साक्षात्कार होता है। इसलिये इससे सावधान रहना चाहिये।

परमार्थ-पत्रावली

(श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके पत्र)

(१)

प्रेमपूर्वक हरि-स्मरण । आपका पत्र मिला । समाचार मालूम हुए । उत्तर इस प्रकार है—

गोपियाँ सभी एक श्रेणीकी नहीं थीं । उनमें बहुत-सी गोपियाँ ऐसी थीं, जिनमें पूर्णतया निष्कामता आ गयी थी । निष्काम साधक होता है इसीलिये उसके साधनको निष्काम कहा जाता है ।

आपका यह कहना बिल्कुल ठीक है कि जबतक मनुष्यका तीनों शरीरोंमेंसे किसी भी शरीरमें अहंभाव रहता है या ममता रहती है, तबतक वह पूर्ण निष्काम नहीं हो सकता । पर इसका अर्थ यह नहीं कि शरीरमें प्राण रहते कोई साधक कामनारहित जीवन प्राप्त नहीं कर सकता ।

आपकी यह मान्यता कि 'कर्त्ता जो कुछ भी जिस रूपमें करता है वह अपने सुखके लिये ही करता है'—आपके लिये ठीक हो सकती है पर सबकी मान्यता एक-सी नहीं हो सकती; क्योंकि मान्यता साधनरूप होती है । साधनका भेद रुचि, विश्वास और योग्यताके भेदसे अनिवार्य है । सिद्धान्तका वर्णन कोई कर नहीं सकता ।

आपने लिखा कि 'स्वेच्छासे जो कुछ किया जाता है वह अपने सुखके लिये ही किया जाता है ।' इसपर यह विचार करना चाहिये कि स्वेच्छा और कामनामें भेद क्या है । यदि कोई भेद नहीं है तब आपका कहना इस अंशमें ठीक ही है । पर यदि भेद माना जाय तो सुख-भोगकी कामनाके बिना भी कर्म किया जा सकता है ।

महाराज रन्तिदेवके विषयमें आपने जो अपनी समझ व्यक्त की, उस विषयमें मैं क्या लिखूँ । उनका क्या भाव था, वास्तवमें दूसरा नहीं बता सकता । ऊपरके व्यवहारसे भावका पूर्णतया पता नहीं चलता । पर यह अवश्य माना जाता है कि जिसका सब प्राणियोंमें आत्म-भाव हो गया है, जो सब प्राणियोंके हितमें रत है, वह साधारण व्यक्ति नहीं है । शरीरसे सम्बन्ध रहते हुए उपर्युक्त भाव पूर्णरूपमें नहीं आ सकता ।

आपने जो इस विषयकी व्याख्या की है वह भौतिक विज्ञानकी दृष्टिसे ठीक है, पर आध्यात्मिक दृष्टि दूसरी बात है ।

आपने जो यह लिखा कि 'जीव अपनेको जब-तक पृथक् मानता है इत्यादि' इनपर विचार करना चाहिये । जीव कौन है ? उसका पृथक् मानना क्या है और न मानना क्या है, वह कबतक पृथक् मानता रहता है ? शरीरमें प्राण रहते हुए यह मान्यता नष्ट हो सकती है या नहीं ? इसपर अपना विचार व्यक्त करें तब उत्तर दिया जा सकता है ।

आपने पूछा—'प्रेम किससे किया जाता है, अपनेसे छोटेसे या बड़ेसे ?' इसका उत्तर तो यह है कि प्रेम अपनेसे छोटेके साथ भी किया जाता है और बड़ेके साथ भी ।

आपने अपनी मान्यता व्यक्त करते हुए जो यह लिखा कि 'कोई भी प्रेमी बिना किसी गुणके या महानता-के किसीसे भी प्रेम नहीं करता' सो यह आप मान सकते हैं । पर यह नहीं कहा जा सकता कि यही मानना ठीक है, दूसरी सब मान्यताएँ गलत हैं; क्योंकि प्रेमतत्त्व अनन्त है ।

आपने लिखा कि 'भगवान् तो ऐसा कर सकते हैं, किंतु जीव नहीं कर सकता; जबतक जीवकोटि है तबतक ऐसा हो नहीं सकता' सो जीवकोटिसे आपकी

क्या परिभाषा है? यह तो आप ही जानें। पर प्रेमी लोग तो सबसे प्रेम करते हैं यह प्रत्यक्ष देखा जाता है। ऐसा न होता तो संतलोग संसारी मनुष्योंके साथ क्यों प्रेम करते ?

आपने लिखा कि 'गोपियोंने जो भगवान् श्रीकृष्णके साथ प्रेम किया, वह प्रेमकी पराकाष्ठा कही जाती है; किंतु मानी नहीं जा सकती।' इसका उत्तर तो यही हो सकता है कि आप चाहे न मानें, जिन्होंने कहा है उन्होंने तो मानकर ही कहा है।

आपने पूछा कि 'उनका प्रेम भगवान् श्रीकृष्णके साथ था या उस परम तत्त्वके साथ, जिससे भिन्न कोई दूसरा तत्त्व ही नहीं है।' इसका उत्तर तो यही हो सकता है कि भगवान् श्रीकृष्णसे भिन्न कोई परम तत्त्व भी है, यह भी उनकी मान्यता ही नहीं थी।

आपने लिखा कि 'परम तत्त्वमें भेद नहीं है' सो परम तत्त्व क्या है, उसमें किस प्रकार भेद है, किस प्रकार भेद नहीं है। यह अपनी-अपनी मान्यताके अनुसार आचार्य-लोग कहते हैं। पर फिर सभी यह कहते हैं कि वह वाणी, मन और बुद्धिका विषय नहीं है।

आपने पूछा कि 'अभेदमें कर्त्ता नहीं, फिर प्रेमकी कोटि क्या ?' इसका उत्तर बतलानेकी जिम्मेवारी तो आपपर ही आ जाती है; क्योंकि आप पहले स्वीकार कर चुके हैं कि अपनेसे छोटेके साथ प्रेम भगवान् तो कर सकते हैं तो क्या भगवान् अपनेको परमतत्त्वसे भिन्न मानते हैं, जिसकी दृष्टिमें छोटे-बड़ेका भेद आपकी मान्यताके अनुसार सिद्ध होता है ?

आपने लिखा कि 'यदि भेद है तो कितना ही उच्च प्रेम या प्रेमी क्यों न हो, प्रेमास्पदसे अपनेको हेय मानकर कुछ कामना अवश्य करेगा।' आपका यह लिखना प्रेमके तत्त्वको विना समझे ही हो सकता है।

आपने लिखा कि 'जो यह मानते हैं कि प्रेमी अपने लिये कुछ नहीं करता, जो कुछ करता या चाहता है प्रेमास्पदके लिये ही करता है, मैं इसको गलत मानता हूँ।' सो आप चाहे जिस मान्यताको गलत मान सकते हैं, आपको कौन मना करता है। परंतु प्रेमियोंका कहना है कि जो अपने सुखभोगके लिये किया जाता है, वह प्रेम ही नहीं है; वह तो प्रत्यक्ष ही काम है, जिसका परिणाम दुःख ही है। असली प्रेममें अपने सुखभोगकी गन्ध भी नहीं रहती। उसको जो प्रेमास्पद-के सुखमें सुख होना कहा जाता है वह तो प्रेमका ही स्वरूप बतलाना है, वह सुखभोग या सुखभोगकी कामना नहीं हैं। प्रेम स्वयं रसमय है, रस ही प्रेमका स्वरूप है और वह असीम तथा अनन्त है।

आपने लिखा कि 'प्रेमास्पद पूर्ण है' सो ठीक है। पर उस पूर्णमें भी प्रेमकी भूख सदैव रहती है; क्योंकि प्रेम उसका स्वभाव है और उसकी पूर्ति नहीं है, क्योंकि वह अनन्त है।

आपने लिखा कि 'प्रेमी और प्रेमास्पद दोनों जब-तक सम नहीं, तबतक प्रेममें पूर्णता नहीं' सो आप ही विचार करें कि यदि प्रेमास्पद स्वयं प्रेमी बन जाय और प्रेमी उसके लिये प्रेमास्पद हो जाय तो दोनों सम हो गये या नहीं ?

आपका यह कहना कि 'प्रेमी' प्रेमास्पद और प्रेमास्पद प्रेमी बन जाय, यह केवल कथन है' सो ऐसी बात नहीं है। प्रेम ऐसा ही विचित्र तत्त्व है। उसमें आपकी युक्ति काम नहीं देती; क्योंकि वहाँतक बुद्धिकी पहुँच नहीं है।

भक्तलोगोंका क्या कहना है और वह किस उद्देश्यसे है, यह तो भक्तलोग ही जानें; पर मैंने तो यह सुना है कि प्रेमका द्वैत द्वैत नहीं है और अद्वैत अद्वैत नहीं है; क्योंकि साधारण दृष्टिसे जैसा द्वैत और अद्वैत समझा

जाता है, प्रेम-तत्त्व उस समझ और कल्पनासे अतीत है। उसे कोई भी तबतक नहीं समझ सकता, जबतक वह स्वयं प्रेमको प्राप्त न कर ले।

आपने लिखा कि 'भगवान्के भक्त भगवान्के हाथके यन्त्र बनकर उनके आदेशानुसार समस्त कर्म होना मानते हैं' तथा आगे पैरा पूरा होनेतक इसकी व्याख्या भी लिखी सो इसमें कोई मतभेद नहीं है। यह मान्यता भी परम श्रेयस्कर है।

श्रीप्रह्लादजी क्या चाहते थे, क्या नहीं चाहते थे, यह समझना कठिन है, उनके चरित्रको सुनकर सुननेवाला अपनी समझके अनुसार कल्पना कर लेता है। भक्तमें स्वार्थकी गन्ध तक नहीं रहती, उसकी दृष्टि-में एकमात्र प्रेम ही प्रेम रहता है, वहाँ कल्पना कैसी? भक्तका चरित्र तो लोकशिक्षाके लिये एक लीला है। उसमें जो कुछ खेल खेला जाता है, वह भगवान्की दी हुई शक्तिसे उन्हींकी प्रेरणासे और उन्हींकी प्रसन्नता-के लिये होता है। अतः दिखायी जानेवाली क्रियाको न तो स्वार्थ कहना चाहिये और न कल्पना ही।

साधनकी पराकाष्ठा क्या है—यह निश्चितरूपसे तो इसलिये नहीं कहा जा सकता कि सब साधकोंके लिये उसका स्वरूप एक-सा नहीं है। पर गीतामें भगवान्ने अपने प्रिय भक्तोंके लक्षण सातवें अध्यायके १९ वें श्लोकमें और बारहवें अध्यायके १३ वें से १९ वें श्लोक तक बतलाये हैं; उनमें पराकाष्ठाकी बातें आ जाती हैं।

शरणागतिकी पूर्णता अपनापन खोनेमें है या यन्त्र-वत् कार्य करनेमें—यह तो शरणागत भक्त ही जानें। पर पहले यह समझनेकी जरूरत है कि यन्त्रका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व रहता है क्या? इसपर विचार करनेपर सम्भव है, आपके प्रश्नका उत्तर हो जाय।

श्रीमान् राष्ट्रपतिजीने हिंदूकोडपर हस्ताक्षर किस भावसे किये, इसका निर्णय देनेका मैं अपना अधिकार नहीं मानता।

'सनातन हिंदू-धर्म कठोरतासे कुचला जा रहा है, इसे नष्ट करनेके लिये विभिन्न कानून बनाये जा रहे हैं' यह ठीक है। पर ऐसा क्यों हो रहा है—इसपर यदि गम्भीरतासे विचार किया जाय तो मानना पड़ेगा कि अपनेको हिंदू कहनेवाले भाई धर्म और ईश्वरकी ओटमें कम अत्याचार और अन्याय नहीं कर रहे हैं। अपनेको साधु, महात्मा, प्रचारक, साधक, भक्त, महन्त, संत, उपदेशक तथा सदाचारी मानने और मनवानेवाले गृहत्यागी और गृहस्थ पुरुषोंकी क्या दशा है? क्या इनमें ऐसे लोग नहीं हैं जो धर्मकी ओटमें अधर्म नहीं कर रहे हैं? क्या लोग ईश्वरकी जगह स्वयं अपनी पूजा-प्रतिष्ठा नहीं करवा रहे हैं? क्या कोई व्यापारी धर्मादेके नामपर अर्थसंग्रह नहीं कर रहे हैं? कोई भी सरल हृदय व्यक्ति उपर्युक्त बातोंको अस्वीकार नहीं कर सकता। अतः यह तो नहीं कहा जा सकता कि धर्मका विरोध ईश्वर-इच्छाके विना ही हो रहा है पर इसका यह अभिप्राय नहीं है कि हमें इसका विरोध नहीं करना चाहिये, हमें इसका विरोध पूरी शक्ति लगाकर करना चाहिये। वह यदि कर्तव्य मानकर किया जाय तो भी अच्छा है और भगवान्का आदेश मानकर किया जाय तो और भी अच्छा है। उसमें सफलता मिले या विफलता, परिणाममें हर्ष-शोक न होना और करते समय रागद्वेषसे रहित होकर करना—यही निष्कामताकी कसौटी है।

(२)

प्रेमपूर्वक हरि-स्मरण। आपका पोस्टकार्ड मिला। समाचार मालूम हुए। आप एक कालेजके विद्यार्थी हैं और मुमुक्षु हैं, यह भी ज्ञात हुआ।

आपकी भगवत्प्राप्तिकी इच्छा प्रबल होती जा रही है, यह बड़ी प्रसन्नताकी बात है। इसका प्रबल होना प्रभुकी विशेष कृपाका निदर्शन है।

आपके पिताजी भी इसी मार्गके पथिक हैं, यह भी बड़े ही सौभाग्यकी बात है। उनके सत्संगसे तथा

मण्डलीके सत्संगसे आपकी भगवत्प्राप्तिकी लालसा बढ़ रही है यह साधारण बात नहीं है, इसे भगवान्‌की विशेष कृपा मानकर आपको भगवान्‌के प्रेममें विभोर होते रहना चाहिये ।

पदार्थजन्य सुख आपको दुःखमय प्रतीत होता है, यह भी बहुत ही अच्छी बात है । इस परिस्थितिमें तो आप सहजभावसे इच्छारहित जीवन प्राप्त कर सकते हैं, जिसके होनेपर विवेक या प्रेमशक्तिकी जागृति होकर बहुत शीघ्र भगवत्प्राप्ति हो सकती है ।

आपने लिखा कि 'आध्यात्मिक विषयमें मैंने थोड़ा अप्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किया है सो ऐसी बात नहीं है । भगवान्‌की अहैतुकी कृपासे आपका जीवन बड़ा उत्तम है । आपको तो अब प्राप्त विवेकका आदर करके साधनमें तत्परतासे लग जाना चाहिये, हर समय प्रेम-पूर्वक प्रभुको याद रखना और उनसे कुछ चाहना नहीं—यही सर्वोत्तम साधन इस मार्गमें है । यह मेरा विश्वास है ।

आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

(१) इस आध्यात्मिक मार्गमें—

(क) चलनेका प्रकार निम्नलिखित है—

जिस नाममें रुचि, विश्वास और स्वभावसे ही प्रेम हो उसका निरन्तर जप करते हुए प्रभुका स्मरण करते रहना ।

व्यवहारमें बड़ोंका आदर करना, उनको प्रणाम करना, उनकी आज्ञाका पालन करना, उनके अधिकारोंकी रक्षा करना, उनसे बदलेमें कुछ चाहना नहीं, उनकी गलती नहीं मानना ।

इसी प्रकार समान स्थितिवालोंसे और छोटोंसे भगवान्‌के नाते प्रेम करना, उनका जिस प्रकार हित हो और उनको सुख मिले, ऐसा ही बर्ताव करना, अपना उनपर कोई अधिकार न मानना और उनके अधिकारकी रक्षा करना ।

इसी प्रकार जिस-जिसके साथ काम पड़े, हरेक प्रवृत्तिमें उपर्युक्त बातोंपर ध्यान रखते हुए व्यवहार करना ।

एक प्रभुको छोड़कर किसीको अपना न मानना, अपनेको प्रभुका समझना । भाव यह कि प्रभुके साथ अपना नित्य और दृढ़ सम्बन्ध मानना ।

अपना शरीर, सम्बन्धी, घर, मकान, धन आदि जो कुछ भी है, सबको भगवान्‌का समझना और भगवान्‌के नाते सबका यथायोग्य उपयोग करना ।

और भी करने योग्य बहुत बातें हैं । उनमेंसे खास-खास लिखी गयी हैं । पत्रमें कहाँतक लिखा जाय । गीताप्रेससे मेरी लिखी हुई तत्त्व-चिन्तामणि और भाई हनुमानप्रसादकी लिखी हुई पुस्तकें मँगाकर देख सकते हैं ।

(ख) शंकाएँ साधन करनेपर अपने-आप दूर हो सकती हैं; नहीं तो, जिसपर आपका विश्वास हो पूछकर उनका समाधान किया जा सकता है ।

(ग) सत्संगके लिये पुस्तकें भगवद्गीता, योगदर्शन, उपनिषद्, रामायण आदि देख सकते हैं। ये पुस्तकें भाषा-टीकासहित गीताप्रेसमें मिलती हैं ।

(२) मनुष्यके जीवित शरीरमें मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ और प्राण तथा जीवात्मा भी है । प्रेतमें अर्थात् मृत शरीरमें ये सब नहीं रहते, इसलिये उसको जला दिया जाता है । सर्वव्यापी परमात्मा तो सर्वत्र है । वह तो मिट्टी और पत्थरमें भी है पर मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, प्राण और जीवात्मा उनमें नहीं हैं । इसलिये उनमें चेतना और ज्ञानशक्तिका प्राकट्य नहीं है । यही अन्तर प्रत्यक्ष है ।

(३) वास्तवमें जो साधक है उसके लिये कर्तव्य-पालन बोझा नहीं है, माने हुए स्वाँगके विधानानुसार

यथायोग्य खेल दिखाकर अपने प्रभुको प्रसन्न करना है। अतः वह जो कुछ भी करता है, प्रभुकी दी हुई वस्तु और शक्तिके द्वारा उन्हींकी आज्ञा, विधान और प्रेरणाके अनुसार उन्हींकी प्रसन्नताके लिये उन्हींके नाते सबकी सेवाके रूपमें करता है। इसलिये कर्तव्य-पालन करते समय भी वह निरन्तर अपने प्रेमास्पदकी मधुर स्मृतिके आनन्दमें विभोर रहता है। इस दशामें उसके लिये कोई भी काम भार कैसे हो सकता है, उसका तो समस्त जीवन ही साधन है।

आपने पूछा कि 'कर्तव्य कब नष्ट होगा सो प्राप्त शक्ति और वस्तुओंका ठीक-ठीक उपयोग हो जानेपर जब साधकके पास अपना कुछ भी नहीं रहेगा और करनेकी आसक्ति समाप्त हो जायगी, तब वह अपने-आप कर्तव्यसे छुट्टी पा जायगा।

इच्छाका अन्त तो साधक जब अपने प्रभुका हो जाता है तभी हो जाना चाहिये।

स्त्री-पुत्रको जब वह अपना नहीं मानेगा, तब बन्धन कैसे रहेगा? मैं और मेरा भी कहाँ रहेगा? इनके न रहनेपर इतिकर्तव्यता अपने-आप आ जायगी। चाहरहित जीवनमें वासना भी अपने-आप नष्ट हो जाती है।

(३)

सादर हरि-स्मरण। आपका पत्र मिला। समाचार मालूम हुए। संसार-सागरके थपेड़ोंसे व्याकुल होकर एवं संसारसे निराश होकर भगवान्‌की शरणमें जाना बड़े ही सौभाग्यकी बात है। साधकको समझना चाहिये कि भगवान्‌की मुझपर अहैतुकी परम कृपा है जो मेरे मनमें उनके आश्रित होनेका भाव प्रकट हुआ।

संसारमें ऐसा व्यक्ति दृष्टिगोचर न हो जो उचित परामर्श दे सके, यह कोई आश्चर्यकी बात नहीं है; क्योंकि संसारमें रचे-पचे व्यक्ति प्रायः स्वार्थपरायण हुआ करते हैं, पर साधकको चाहिये कि उनके दोषोंपर दृष्टिपात न करे, उस विवेकका उपयोग अपने दोषोंको देखने और मिटानेमें करे। मनसे किसीका बुरा न चाहे, अपने साथियोंके हित और प्रसन्नताका खयाल रक्खे, उनपर अपना कोई अधिकार न माने तथा उनके अधिकारकी रक्षा और अपने कर्तव्यपालनका विशेष ध्यान रक्खे।

आपका हृदय भगवान् श्रीकृष्णके प्रेमसे रञ्जित है, यह भगवान्‌की विशेष कृपा है। उनके दर्शनोंकी तीव्र लालसा होना, यही तो मनुष्यजन्मका सर्वोत्तम लक्ष्य है। इस लालसाको पूर्ण करना सर्वशक्तिमान् परम प्रेमी प्रभुके हाथमें है। अतः उनके आश्रित भक्तको कभी निराश नहीं होना चाहिये, निराशा तो साधनका विघ्न है, भगवान्‌पर दृढ़ भरोसा रखना चाहिये।

भगवान्‌का दिव्य वृन्दावनधाम और सेवाकुञ्ज सर्वत्र हैं, उनके प्रेमी भक्तका उसीमें नित्य निवास रहता है, उसकी दृष्टिमें इस पाञ्चभौतिक जगत्‌का अस्तित्व ही नहीं रहता। अतः आपको इसके लिये निराश नहीं होना चाहिये।

यह हो सकता है कि जिस पाञ्चभौतिक शरीरको आप अपना स्वरूप मान रही हो, इसका उस वृन्दावनमें निवास न हो सके; परंतु वास्तवमें यह आपका स्वरूप नहीं है, यह तो हाड़, मांस और मलमूत्रका थैला है, आपका स्वरूप तो उस परम प्रेमके समुद्र भगवान् श्रीकृष्णकी ही जातिका वैसा ही दिव्य है। अतः उचित है कि आप जिस शरीरको और उसके सम्बन्धी माता, पिता, भाई, नाना, मामा आदिको अपना मान रही हैं, उन सबसे ममता तोड़कर एकमात्र प्रभुको ही अपना सब कुछ समझें। वे प्रभु जब आपको अपने दिव्य वृन्दावन-धामकी सेवाकुञ्जमें निवास कराना चाहेंगे तब कोई भी रोक नहीं सकेगा। वे बड़े नटखट हैं। वे देखते हैं साधकके भावको। जब साधक सब प्रकारके सुख-

भोगकी इच्छाका त्याग करके एकमात्र उन्हींके प्रेममें निमग्न हो जाता है, उनसे मिलनेके लिये सर्वभावसे व्याकुल हो उठता है, तब वे तत्काल ही उसे अपने वृन्दावन धाममें प्रवेश कर लेते हैं। अतः निराशाके लिये कोई स्थान नहीं है।

आपके·······जो आपकी भगवद्भक्तिका विरोध करते हैं, वृन्दावन धामको नरक और भगवान्‌के भक्तोंको ढोंगी बताते हैं एवं सेवाकुञ्जमें दर्शन होने आदि बातोंको झूठा प्रचार बताते हैं, इसे सुनकर आपको न तो आश्चर्य करना चाहिये और न उन कहनेवालोंको बुरा ही समझना चाहिये। जो मनुष्य जिसके महत्त्वसे अनभिज्ञ होता है वह उसकी निन्दा किया ही करता है, यह कोई अस्वाभाविक नहीं है। वे तो भगवान्‌की विशेष कृपाके पात्र हैं; क्योंकि हमारे प्रभुका नाम पतित-पावन और दीनबन्धु है। जब वे हमारे-जैसे अधमोंको अपनानेके लिये अपना प्रेम प्रदान करते हैं, तब दूसरोंको क्यों नहीं करेंगे। ऐसा भाव करके सबके साथ प्रेमका व्यवहार करते रहना चाहिये और उनके कहनेका किंचिन्मात्र भी दुःख नहीं मानना चाहिये।

आपने लिखा कि एक क्षणके लिये भी सत्संग नहीं मिलता, सो भगवान्‌की स्मृतिसे बढ़कर दूसरा सत्संग कौन-सा है। भगवान्‌में प्रेम होना ही सत्संगका सार है। अतः साधु पुरुषोंका सङ्ग न मिले तो भी उसके लिये चिन्ता नहीं करनी चाहिये। भगवान् आवश्यक समझेंगे तो वैसे सत्संगकी व्यवस्था स्वयं करेंगे। साधकको तो सर्वथा उनपर निर्भर होकर निश्चिन्त हो जाना चाहिये।

मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ, किसीपर कृपा करनेकी मुझमें सामर्थ्य ही कहाँ है, कृपा तो उस सर्वशक्तिमान् कृपानिधान प्रभुकी सबपर है ही, उसीका हरेक घटनामें दर्शन करते रहना चाहिये।

आपने घरपर ही भगवान्‌के दर्शन होनेका उपाय पूछा, सो उनके दर्शनोंकी उत्कट इच्छा ही सर्वोत्तम और अमोघ उपाय है। अतः उसीको इतना तीव्रातितीव्र बढ़ाना चाहिये कि फिर, बिना दर्शनोंके क्षणभर भी चैन न पड़े।

जो यह कहते हैं कि कलियुगमें भगवान्‌के दर्शन नहीं होते, वे भोले भाई हैं। उनको भगवान्‌की महिमाका अनुभव नहीं हुआ है। अतः उनकी बातपर ध्यान नहीं देना चाहिये। सच तो यह है कि भगवान् जितनी सुगमतासे कलियुगमें दर्शन देते हैं उतनी सुगमतासे किसी भी युगमें नहीं देते; क्योंकि वे पतित-पावन हैं।

मूर्तिकी प्राणप्रतिष्ठा कराना कोई खास आवश्यक नहीं है। मीराँने कब प्राणप्रतिष्ठा करायी थी ? पर उनकी तो अपने प्रभुसे बराबर बातचीत चलती थी। अब आप ही विचार करें कि शास्त्रीय प्राण-प्रतिष्ठा आवश्यक है या भावमयी प्राणप्रतिष्ठा आवश्यक है। भावमयी प्राणप्रतिष्ठाको कोई नहीं रोक सकता।

आपने जपकी संख्याके विषयमें पूछा, सो जिन प्रेमियोंका जीवन ही भजन-स्मरण है उनके मनमें यह सवाल ही क्यों उठना चाहिये कि कितनी संख्या पूरी होनेपर मुक्ति होती है; क्योंकि संसारसे तो उनकी एक प्रकारकी मुक्ति उसी समय हो जाती है जब वे सबसे नाता तोड़कर एकमात्र प्रभुको ही अपना सर्वस्व मान लेते हैं और भगवान्‌के प्रेम-बन्धनसे, उनको मुक्त होना नहीं है। अतः प्रेमी भक्तके मनमें तो यह सवाल ही नहीं उठना चाहिये।

'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय' यह मन्त्र बहुत अच्छा है, ध्रुवजीने इसी मन्त्रका जप किया था।

जपकी संख्याका हिसाब तो उस साधकके लिये आवश्यक है, जिसको निश्चित संख्यातक जप करना है

और बाकी बचे हुए समयमें दूसरा काम करना है। जिस साधकका भजन-स्मरण ही जीवन बन गया हो उसके लिये संख्याका हिसाब रखनेकी आवश्यकता नहीं है। जप चाहे जैसे भी किया जाय वह निष्फल नहीं हो सकता।

जप करते समय माला उसी समय हाथसे छूटती है, जब मन दूसरी ओर चला जाता है या तन्द्रा (आलस्य) आ जाती है। माला छूट जाय तो जप फिर आरम्भसे ही करना चाहिये; क्योंकि संख्या रखना तो लक्ष्य है नहीं।

भगवद्गीताके माहात्म्यमें जो एक श्लोकसे मुक्ति बतायी है, उसका सम्बन्ध विश्वाससे है। यदि मनुष्य एक श्लोकपर श्रद्धा करके उसके अनुसार अपना जीवन बना ले तो केवल मुक्ति ही नहीं, भगवान् स्वयं भी मिल जाते हैं। भगवान्ने स्वयं कहा है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥
(गीता ८। १४)

अर्थात् जो अनन्य चित्तवाला भक्त नित्य-निरन्तर मेरा स्मरण करता है, उस नित्य मुझमें लगे हुए भक्तके लिये मैं सुलभ हूँ।

अतः यही समझना चाहिये कि जिनको गीताकी महिमापर विश्वास नहीं है, जो उसकी महिमाको सुनकर भी मानते नहीं, उनको वह लाभ नहीं मिलता जो मिलना चाहिये।

जप करते समय उदासी या आलस्यका आना प्रेमकी कमीका द्योतक है। जप और चिन्तन जबतक किया जाता है, तबतक उसमें थकावटका अनुभव होकर आलस्य आया करता है, पर जब वह साधन स्वाभाविक जीवन बन जाता है, उसके बाद उसमें थकावट नहीं आती।

सिद्ध सखी देहकी प्राप्ति प्रेमकी धातुसे बने हुए प्रेममय दिव्य शरीरको प्राप्त होनेको कहते हैं। उसीसे भगवान्के लीलाधाम दिव्य वृन्दावनमें प्रवेश होता है। अतः 'कल्याण' में जो बात लिखी है, वह ठीक ही होगी। सिद्ध देहको प्राप्त करनेका साधन एकमात्र भगवान्की कृपाका आश्रय और उनका अनन्य प्रेम ही है। उसे प्राप्त करनेका अधिकार हरेक मनुष्यका है। फिर आपका क्यों नहीं है!

(४)

आपका कार्ड मिला। समाचार मालूम हुए। कार्डका उत्तर न दिया जाय और लिफाफेका दिया जाय, ऐसी बात नहीं है; कार्डका उत्तर देनेमें तो अपेक्षाकृत सुविधा रहती है।

आपके प्रश्नोंका उत्तर क्रमसे इस प्रकार है—

(१) प्रकृतिका दूसरा नाम अव्यक्त और प्रधान भी है। इसके प्रधानतया तीन गुण बताये गये हैं— सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण। इन तीनोंके मिश्रणसे अनेक भेद हो जाते हैं। सत्त्वगुणमें प्रकाश, ज्ञान और सुखकी प्रधानता है। रजोगुणमें आसक्ति और हलचल-की प्रधानता है। तमोगुणमें अज्ञान, प्रमाद और मोहकी प्रधानता रहती है।

(२) परमात्माको पुरुषोत्तम, परमेश्वर, परब्रह्म, सर्वात्मा आदि अनेक नामोंसे पुकारा जाता है। वे मायाप्रेरक, सबके रचयिता, सर्वशक्तिमान्, सब दिव्य कल्याणमय गुणोंके समुद्र होते हुए ही सबसे अलग, अलिप्त और अकर्ता तथा अभोक्ता हैं एवं गुणोंसे अतीत भी हैं। यही उनकी विशेषता है।

(३) परमात्मा ज्ञानस्वरूप, प्रकृतिके प्रेरक और सर्वज्ञ हैं। प्रकृति जड और परमात्माकी सत्तासे नाचने-वाली है। यही भिन्नता है। पर है उस परमात्माकी ही शक्ति, इसलिये अभिन्न भी है; क्योंकि शक्तिमान्से भिन्न शक्तिकी कोई सत्ता नहीं होती।

(४) जीवात्मा परमात्माका ही अंश है, इसको परमात्माकी परा प्रकृतिके नामसे (गीता ७।४) और स्वभावके नामसे (गीता ८।३) भी कहा है। यह जबतक जड प्रकृतिमें स्थित रहता है (गीता १३।२१), तबतक सुख-दुःख भोगता रहता है और विभिन्न योनियोंमें जन्मता रहता है। प्रकृतिका सङ्ग छोड़कर मुक्त हो जाता है और अपने परम कारण—परम आश्रय परमेश्वरको प्राप्त हो जाता है।

(५) सभी प्राणी प्रकृति और जीव अर्थात् क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके संयोगसे उत्पन्न हैं (गीता १३।२६)। अतः यह कहना कि हम सब प्रकृतिकी देन हैं तभी ठीक माना जा सकता है, जब हम परमात्माकी परा और अपरा दोनों प्रकृतियोंको मिलाकर प्रकृति शब्दका प्रयोग करते हैं अन्यथा अकेली जड प्रकृतिमें कोई विकास नहीं हो सकता।

हम कोई कार्य प्रकृतिके प्रतिकूल करते हैं तो प्रकृति हमको समुचित दण्ड देती है, पर देती है उस सर्वप्रेरक परमेश्वरके विधानके अनुसार ही। इस बातको कभी नहीं भूलना चाहिये।

बीज और वृक्ष आदिके विकासके विषयमें भी आपने जो कुछ लिखा है उसका भी यही उत्तर है कि जितना भी विकास होता है सब जड और चेतनके संयोगसे और उन दोनोंके प्रेरककी प्रेरणासे ही होता है। अतः आपका यह कहना कि प्रकृति स्वयं ही कर्मोंकी फलदात्री है, अन्य कोई उसका प्रभु नहीं है सर्वथा युक्तिविरुद्ध और शास्त्रविरुद्ध है; क्योंकि जड प्रकृति बेचारीको क्या पता कि किसका क्या कर्म है और उसका कौन-सा फल उसे कब और किस प्रकार देना चाहिये। क्रिया तो होते-होते ही नष्ट हो जाती है, उसके संस्कार किसमें और किस प्रकार किसके आश्रित संगृहीत होते हैं; इसपर विचार करना चाहिये।

ज्ञान, आनन्द और विचार बिना चेतनके प्रकृतिमें कहाँ और कैसे रह सकते हैं। वह यह विभाजन कैसे करेगी कि किसको ज्ञान देना चाहिये, किसको किस कर्मका फल किस प्रकारके सुख-दुःखके रूपमें देना चाहिये—इत्यादि।

अतः यह मानना ही पड़ेगा कि उस प्रकृतिको नियमितरूपसे चलाने और प्रेरणा देनेवाला, जीवोंके साथ उसका यथायोग्य सम्बन्ध जोड़नेवाला—उसका अधिष्ठाता, निर्माता और प्रेरक कोई अवश्य है और वही सर्वशक्तिमान् परमेश्वर है। उसीका प्रकृतिपर अधिकार है और प्रकृतिका उसपर कोई अधिकार नहीं है।

प्रकृतिका अधिकार तो एक सिद्ध योगीपर भी नहीं रहता, फिर परमेश्वरकी तो बात ही क्या है! प्रकृतिके कार्यमें परमेश्वर तो बराबर दखल देते ही हैं, उसके अतिरिक्त योगी भी दखल दे सकता है। फिर आपने यह कैसे निश्चय किया कि कोई भी दखल नहीं दे सकता। आप ही बताइये कि मीराँपर जहरका असर क्यों नहीं हुआ? प्रह्लादको आग क्यों नहीं जला सकी?—इत्यादि। × × ×।

'अर्थ' नामक अनर्थ

धनका साधन, प्राप्ति, वृद्धि, रक्षा, व्यय, भोग और धननाश। सबमें अति आयास, त्रास, चिन्ता, भ्रमका है नित्य निवास ॥ १ ॥
चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ, मद, काम, क्रोध और अभिमान। भेद, वैर, स्पर्धा, लम्पटता, अविश्वास, जूआ, मदपान ॥ २ ॥
'अर्थ'नामधारी 'अनर्थ' ही इन पन्द्रह अनर्थका मूल। अतः श्रेयकामी धनको दे त्याग दूरसे, करे न भूल ॥ ३ ॥
भाई, पत्नी, पिता, सुहृद जो सदा स्नेहवश रहते एक। कौड़ीके कारण फटता मन, बनते शत्रु त्यागकर टेक ॥ ४ ॥
अल्प अर्थके लिये क्षुब्ध हो, गुस्सेमें भरकर अत्यन्त। सहसा तज सौहार्द, वैर सन, जीवनका कर देते अन्त ॥ ५ ॥

× × ×

पाकर भी इस नर-शरीरको जो है स्वर्गमोक्षका द्वार। कौन फँसेगा, इस अनर्थके धाम अर्थमें करके प्यार ॥ ६ ॥

(श्रीमद्भा० ११। २३। १७–२१, २२ के आधारपर)

पश्चात्तापकी चिकित्सा

(लेखक—पं० श्रीजानकीनाथजी शर्मा)

पापोंके फलस्वरूप मनुष्य मरकर नरकोंमें तो जाता ही है, कहते हैं जीवनमें भी कभी-कभी उसे अपने किये हुए दुष्कर्मोंके फलस्वरूप ऐसा पश्चात्ताप, ऐसी ग्लानि उत्पन्न होती है, जिससे या तो वह पागल हो जाता है या आत्म-हत्यादि करके प्राण गँवा बैठता है। और कोई भी विचार-शील मनुष्य जब अपनी आयुके विगत खण्डोंपर दृष्टिपात करता है, अपने जीवनके पिछले भागोंपर एक नजर डालता है तो जन्मान्तरकी बात छोड़ भी दी जाय तो भी उसका प्राप्त मानव-शरीर भी केवल प्रमादमें ही बीता दीखता है। दुर्भाग्यवश ऐसे संयोग भी जीवनमें आ जाते हैं, जहाँ कर्तव्यका निर्णय ही दुर्गम हो जाता है। साधारण धर्मचिकीर्षु जहाँ अपनेको त्यागी, शुद्ध तथा दोषोंसे बचा देखता है, सूक्ष्म दृष्टिसे वहाँ अचिकित्स्य दुष्कृत-सम्पन्न हो जाता है।[1] और इस नाते तो पराम्बा भगवती सीताके शब्दोंमें—'संसारमें कोई भी व्यक्ति नहीं जिससे कोई भूल हुई ही न हो—'न कश्चिन्नापराध्यति।' (वाल्मीकि० युद्ध० ११४ । ४४) । किंतु प्राकृत व्यक्तिके जीवनमें तो केवल प्रमाद, चूक तथा सारी बातें विगड़ी ही मिलती हैं। वह देखता है कि बाल्यकालमें अध्ययनादि क्रियाओं एवं गुरुजनोंकी सेवासे विमुख रहा। यौवनमें अविवेक तथा चापल्यके कारण स्वकर्तव्यावधारण तथा आचरणसे पराङ्मुख हुआ। प्रौढावस्थामें तृष्णातरंगमें पड़कर धनादिके मोहमें जा पड़ा और वार्द्धक्यमें तो केवल मनोरथ-तरंगोंमें बहनेके अतिरिक्त तथा इन्द्रियशैथिल्य एवं दुष्कर्मजनित फल भोगनेके सिवा और होना जाना ही क्या।[1]

आशाकी किरण

ऐसी दशामें, जब एकाएक अपने अनगिनत अपराध सामने आ जायँ, तब निराशा तथा व्याकुलता एवं विचित्र पश्चात्ताप होना स्वाभाविक ही है। हिंदू-धर्मशास्त्रोंमें ऐसे प्रायश्चित्त बतलाये हैं, जिनके आचरणसे तत्तत्पापोंकी शान्ति, मनःसंतोष तथा आत्मशुद्धि होती है। तीर्थानुसरण, संत-समागम, अनशन, कृच्छ्र, प्राजापत्य, महापराक, चान्द्रायण आदि व्रतोंसे घोर महापातकोंकी भी शान्ति हो जाती है। तथापि कई ऐसे भयानक पाप भी हैं, जिनके लिये कोई प्रायश्चित्त सफल नहीं होता। शास्त्रोंमें ही आया है कि श्रीरामनिर्मित सेतुबन्ध, श्रीरामेश्वरम्के दर्शनस्नानसे, गङ्गासागरकी यात्रासे ब्रह्महत्याका अपाकरण तो हो सकता है पर सहजमित्रके द्रोहका मोक्षण नहीं हो सकता—

'सेतुं गत्वा समुद्रस्य गङ्गासागरसंगमम्।
ब्रह्महापि प्रमुच्येत मित्रद्रोही न मुच्यते॥'

---

१. (क) धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्। (महा० वन०)

(ख) सूक्ष्मो धर्मो दुर्विदश्चापि पार्थ विशेषतोऽङ्गैः प्रोच्यमानं निबोध। (कर्णपर्व ७० । २८)

(ग) असत्याः सत्यसंकाशाः सत्याश्चासत्यदर्शनाः।
दृश्यन्ते विविधा भावास्तेषु युक्तं परीक्षणम्॥
(म० शां० प० १११। ६५, नारद स्मृति व्यवहा० दर्श० ६३,६४)

(घ) श्रुतिप्रमाणो धर्मोऽयमिति वृद्धानुशासनम्।
सूक्ष्मा गतिर्हि धर्मस्य बहुशाखा ह्यनन्तिका॥
(महा० वन० २०९। २ बृहन्ना० उत्तर० २८ । २७)

(ङ) सूक्ष्मः परमदुर्ज्ञेयः सतां धर्मः प्लवंगम।
(वा० रा० ४। १८। १६)

(च) अधर्मो यत्र धर्माख्यो धर्मश्चाधर्मसंज्ञितः।
स विज्ञेयो विभागेन यत्र मुह्यन्त्यबुद्धयः॥
(महा० वन० १५० । २७)

१. (क) कछु है न आई गयो जनम जाय।
अति दुरलभ तनु पाइ कपट तजि, भजे न राम मन बचन काय॥
लरिकाई बीती अचेत चित चंचलता चौगुने चाय।
जोवन-जुर जुवती कुपथ्य करि भयो त्रिदोप भरि मदन बाय॥
मध्य बयस धन हेतु गँवाई, कृपि बनिज नाना उपाय।
अब सोचत मनि बिनु भुअंग ज्यों बिकल अंग दले जरा धाय॥
सिर धुनि धुनि पछितात मीजि कर कोउ न मित हित दुसह दाय।
जिन लगि निज परलोक बिगार्‌यौ, ते लजात होत ठाढ़े ठाँय॥
(विनय-पत्रिका)

(ख) दो में एकौ तौ न भई।
सुत सनेह तिय सकल कुटुम मिलि निसदिन होत खई॥
पद-नख-चंद-चकोर-विमुख मन खात अंगार मई······।
सूरदास सेये न कृपानिधि जो सुख सकलमई॥
(सू० सा०)

(ग) 'ऐसेहि जनम समूह सिराने' तथा 'जनम गयउ बादिहिं पै बीति' आदि— (वि० प०)

महाभारत शान्तिपर्वमें कहा गया है—

गोहत्यादि सभी पापोंका तो निस्तार है पर शरणागत-हत्या, परित्यागका नहीं—

गोघ्नेष्वपि भवेदस्मिन् निष्कृतिः पापकर्मणः।
न निष्कृतिर्भवेत् तस्य यो हन्याच्छरणागतम्॥ १४९। १९

'सरनागत कहँ जे तजहिं निज अनहित अनुमानि।
ते नर पामर पापमय तिनहिं बिलोकत हानि॥'

प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम्।
न निष्पुनन्ति राजेन्द्र सुराकुम्भमिवापगाः॥
(श्रीमद्भा० ६। १। १८; नारदपु० पू० ३०। ४)

ब्रह्महत्यारा, मद्यपायी, चोर और अवकीर्णी आदि व्रतलोपकों का निस्तार भी हो सकता है, पर कृतघ्नका किसी प्रकार निस्तार नहीं—

ब्रह्मघ्ने च सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा।
निष्कृतिर्विहिता राजन् कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः॥१७२। २५

मित्रद्रोही, कृतघ्न और नराधम नृशंसका कृमि, शृगाल या गिद्ध किंवा राक्षसतक भी मांस नहीं खाते; छूते तक नहीं।

मित्रद्रोही कृतघ्नश्च नृशंसश्च नराधमः।
क्रव्यादैः कृमिभिश्चैव न भुज्यन्ते हि तादृशाः॥ १७२। २६

मित्रद्रोहीको अनन्तकालतक नरककी हवा खानी पड़ती है। उसके अक्षय नरकवासकी कोई चिकित्सा नहीं—

'मित्रध्रुङ् नरकं घोरमनन्तं प्रतिपद्यते।१७३। २१

मित्रद्रोह, कृतघ्नता और विश्वासघात—ये तीन पाप ऐसे भयानक हैं, जिनसे कल्पपर्यन्त प्राणीको नरकवास करना पड़ता है—

मित्रद्रोही कृतघ्नश्च यश्च विश्वासघातकः।
त्रयोऽप्येते नरकं यान्ति यावदाभूतसम्प्लवम्॥
(पचतंत्र १। ४५४; वेना० पंच० जम्भल कथा)

मित्रद्रोह, कृतघ्नता, स्त्रीहत्या तथा गुरुहत्याका हम-लोगोंने कोई भी प्रायश्चित्त, कोई निस्तार नहीं सुना—

मित्रद्रुहः कृतघ्नस्य स्त्रीघ्नस्य गुरुघातिनः।
चतुर्णां वयमेतेषां निष्कृतिर्नानुशुश्रुम॥
(महा० शां० प० १०८। ३२)

गुरु, माता, पिता आदिसे जो द्रोह करता है, चाहे वह मनसे करे या वचनसे, वह पाप भ्रूणहत्यासे भी बढ़कर है, उससे बड़ा कोई पापी नहीं, उसका प्रायश्चित्त नहीं—

उपाध्यायं पितरं मातरं च ये-
ऽभिद्रुह्यन्ते मनसा कर्मणा वा।
तेषां पापं भ्रूणहत्याविशिष्टं
तस्मान्नान्यः पापकृदस्ति लोके॥
(म० शा० १०८। ३०)

नारायणपराङ्मुख—ऐसे पापियोंको प्रायश्चित्त वैसे ही अकिंचित्कर हैं, जैसे सुराकुम्भके लिये नदी या गङ्गा।

परम सौभाग्यकी बात

इन बातोंकी ओर ध्यान जानेपर आशा पुनः ध्वस्त हो जाती है, किंतु पूज्यपाद गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी महाराज कहते हैं कि 'निराश तो भइया! होओ ही मत। एक जन्मकी कौन पूछे यदि तुमने गत सभी जन्मोंमें भी केवल बिगाड़ी ही है तो भी चिन्ता नहीं, वह आज ही और अभी तुरंत ही सुधर जायगी, सारी बात बन जायगी। एक ऐसा जादू है कि फूँक मारते ही सारे पाप-ताप स्वप्नवत् तिरोहित हो जायँगे और वह जादू है भगवान् राघवेन्द्रके सम्मुख हो जाना, उनकी ओर बस, दृष्टि फेर देना, उनकी शरणमें आ जाना, उनका नाम ले लेना—

'बिगरी जनम अनेककी सुधरत पल लगै न आधु।
पाहि कृपानिधि प्रेम सों कहे को न राम कियो साधु॥'
(विनय० १९३। ३)

'बिगरी जनम अनेक की, सुधरै अबहीं आजु।
होहि राम को नाम जपु, तुलसी तजि कुसमाजु॥'
(दोहावली)

जहाँ तुमने उनको देखा, उनके सामने आये कि तुम्हारे करोड़ों, अगणित जन्मकी पापराशि जली। वे तो तुम्हारी आशा लगाये, प्रतीक्षा करते हुए तुम्हारी ओर देख ही रहे हैं।

'सन्मुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥'
जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥
तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना॥

इतना ही नहीं, वे तो तुम्हारी सारी बीती बातोंको लौटा सकते हैं, ठीक उसी कालको ला सकते हैं। वे तो सर्व-समर्थ हैं—

'गई बहोरि गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू॥'

वे तो तीनों लोकोंको मारकर पुनः जिला सकते हैं, क्षण-भरमें प्रलय करके पुनः लोकोंकी सृष्टि कर सकते हैं—

सर्वांल्लोकान् सुसंहृत्य सम्भूतान् सचराचरान् ।
पुनरेव तदा स्रष्टुं शक्तो रामो महायशाः ॥
(वा० ५ । ५१ । ३९)

'प्रभु सक त्रिभुवन मारि जिआई । केवल सक्रहि दीन्हि बड़ाई ॥'

'मुए जियाए भालु कपि, अवध विप्रको पूत ।
तुलसी सुमिरु तू रामको जाको मारुति दूत ॥'

वे तो सभी असम्भवोंको सम्भव करसकते हैं । यह सारा सृष्टिविलास उनकी भ्रूभङ्गलीला मात्र है । उन्होंने शिलाको स्त्री कर दिया, समुद्रमें पत्थरोंको तैराया, कई मृतकोंको भी जिला दिया, भला उनके अनुग्रहसे कौन-कौन-सा कल्याण सुलभ न हो जायगा—

'सिला सुतिय भइ गिरि तरे, मृतक जिये जग जानि ।
राम अनुग्रह सकल सुभ, सुलभ सकल कल्यान ॥'

उनकी कृपा हो जानेपर तो तुम्हारी पराजय भी जय, तुम्हारी मृत्यु भी अमृतत्व, हानि भी लाभ, विष भी अमृत तथा घोर भयानक मङ्गल भी परम मङ्गल बन जायगा । वे मच्छरको ब्रह्मा और ब्रह्माको पलक मारते मच्छर बना सकते हैं, फिर भैया! चिन्ता किस बातकी—

'मसक बिरंचि बिरंचि मसक सम करहुँ प्रभाव तुम्हारो ।'

'मसकहि करहि बिरंचि प्रभु' अजहि मसक तें हीन ।
अस बिचारि तजि संसय, रामहि भजहिं प्रबीन ॥'

वे तो जडको भी चेतन और चेतनको भी जड कर सकते हैं । उनकी लीलाशक्ति, 'अघटनघटनापटीयसी' तथा वे—'सर्वाद्भुतचमत्कारलीलाकल्लोलवारिधि' 'लीलादुर्ललिताद्भुतव्यसनी' आदि नामोंसे समादृत किये जाते हैं—

'जो चेतन कहँ जड़ करइ जड़हि करै चैतन्य ।
अस समर्थ रघुनायकहि भजहिं जीव ते धन्य ॥'

सर्वोपरि अमृतोपम वस्तु

और सबसे बड़ी बात तो यह है कि इन शरणागत-रक्षा आदि धर्मोंका सर्वाधिक ध्यान भी तो उन्हीं प्रभुको रहता है । आश्रितकी व्यथासे तो वे सहस्रधा व्यथित होते हैं—

इयं सा यत्कृते रामश्चतुर्भिः परितप्यते ।
कारुण्येनानृशंस्येन शोकेन मदनेन च ॥
स्त्री प्रनष्टेति कारुण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यतः ।
पत्नी नष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेन च ॥
(वा० ५ । १५ । ४८-४९)

और जब वे ध्यान रक्खें तो आश्रित व्यक्तिसे भूल होने ही नहीं पाती । यदि वह कहीं भूल करता है तो वे उस भूलका वहीं सुधार करते चलते हैं—

'आये सदा सुधारि सुसाहिब जनते बिगड़ि गयी है ।'
(गीता० अयोध्याकां० ७८ । ३)

मोर सुधारिहि सो सब भाँती । जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती ॥

'न घटै जन सो जेहि राम बढ़ायो' (कविता०)

उपर्युक्त चौपाईकी व्याख्यामें 'पीयूषकार'ने भगवान्की कृपाशक्तिका तत्तद् व्याख्याओंसे हृदयहारी सार एकत्रित करते हुए लिखा है—'जिनपर एक बार प्रभुकी कृपा हो गयी, उनपर बराबर कृपा होती ही रहती है । तथापि सहज कृपालु भगवान् यही समझते हैं कि जितनी कृपा चाहिये थी उतनी नहीं हो सकी ।' और जब वह कृपा हो जाती है तब दिव्यतम होनेके कारण वह बढ़ती ही जाती है और तब आश्रितकी सारी बिगड़ी बातें चाहे वह बिगड़ जानेकी परतम पराकाष्ठा ही क्यों न हो, प्रभु पलक मारते सुधार ही लेते हैं । जिसपर वे एक बार कृपा कर डालते हैं, फिर उसकी चूकोंका ध्यान नहीं करते—

जेहि जन पर ममता अरु छोहू । तेहि करुना करि कीन्हि न कोहू ॥
रहति न प्रभु चित चूक किये की । करत सुरति सय बार हिये की ॥

वे तो यही सोचते हैं कि हमने इसपर कम कृपा की, इसीसे चूक हुई, नहीं तो क्यों होती ?

स्वसामर्थ्यानुसंधानाधीनकालुष्यनाशिनः ।
हार्दो भाव विशेषो यः कृपा सा जगदीश्वरी ॥
(भगवद्गुणदर्पण)

सच्ची बात तो यह है कि भगवान् तो बहुत पहलेसे जागरूक रहते हैं और उनके जागरूक रहते उनके आश्रित-जनसे चूक सम्भव ही कहाँ? और उनकी कृपादृष्टिमें तो इतनी प्रबल पीयूषवर्षिणी शक्ति है कि वह तत्क्षण करोड़ों जन्मके पातकप्रसूत घोर त्रयतापोंको उपशमन कर लेती है । वह तीव्र शोकाश्रुसागरको पलभरमें सुखा डालती है—

'तीव्रशोकाश्रुसागरविशोषणमत्युदारम्'

'तस्यावलोकमधिकं कृपयातिघोर-
तापत्रयोपशमनाय निसृष्टमक्ष्णोः ।'
(श्रीमद्भा० ३ । २८ । ३१)

---

१. सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतम् ।
नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः ॥
(श्रीमद्भा० ६ । २ । १०)

पुकारनेपर वे गजराजके उद्धारके लिये गरुड़की चालसे भी संतुष्ट न हुए (जिनकी इच्छागति है) । वे झट गरुड़परसे उतरकर उसकी रक्षाके लिये दौड़ पड़े थे—

'सहसावतीर्य सग्राहमाशु सरसः कृपयोज्जहार ।'

'आरत गिरा सुनत खगपति तजि चलत बिलंब न कीन्ह ।'

सचमुच भगवान्‌की कृपाके लिये कोई उपयुक्त विशेषण नहीं । उसे देखते किसी अन्य वस्तुका पश्चात्ताप तो व्यर्थ ही है, पर भगवान्‌के इस अद्भुत कोमल, मृदुल, कृपालु स्वभावको जानकर, स्मरणकर भी, हम जो प्रभुके निरुपाधि, निष्प्रपञ्च जन नहीं बन पाये, यह अवश्य हमारा सबसे भयानक सांघातिक पाप है, जो सर्वथा दुश्चिकित्स्य है—

तुलसी अब रामको दास कहाइ हिये धरु चातककी धरनी ।
करि हंस को बेस बड़ो जगमें तज दे बक बायस की करनी ॥

भगवान् बुद्धदेव और उनका सिद्धान्त

(बुद्ध-महापरिनिर्वाण—दिवसपर हनुमानप्रसाद पोद्दारका एक व्याख्यान)

जन्म और जीवन

आज भगवान् बुद्धदेवके महापरिनिर्वाणका पवित्र दिवस है । आजसे पचीस सौ अस्सी वर्ष पूर्व इन महामानवका भारतवर्षमें ही अवतार हुआ था । गोरखपुरके समीप ही कपिलवस्तुमें शाक्यवंशीय महाराज शुद्धोदन राज्य करते थे । यह शाक्यवंश प्रसिद्ध सूर्यवंशीय इक्ष्वाकुवंशकी ही एक शाखा माना जाता है । इसी पवित्र इक्ष्वाकुवंशमें पूर्ण-परात्पर-ब्रह्म मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामचन्द्रका अवतार त्रेतायुगमें हुआ था ।

महाराज शुद्धोदनके दो रानियाँ थीं—महामाया और महाप्रजावती । पर इनके कोई संतान नहीं थी । चौवालीस वर्षकी अवस्थामें एक दिन रानी महामायाने स्वप्नमें देखा कि एक चार दाँतोंवाला श्वेत वर्णका हाथी है और छः नोकवाला एक प्रकाशपुञ्ज तारा है । वह तारा महामायाके शरीरमें प्रविष्ट हो गया । उस दिन सूर्य कर्कराशिका था । ज्योतिषियोंने इसका बहुत अच्छा फल बतलाया ।

रानी महामाया गर्भवती हुईं, दसवें महीने वे अपने नैहर जा रही थीं । रास्तेमें लुम्बिनी वनमें एक शाल वृक्षकी डाल पकड़कर खड़ी हो गयीं, वहीं बालकका जन्म हो गया । बालक बड़ा तेजस्वी, अत्यन्त सुन्दर, सर्वजनमनमोहन था । वह विचित्र बालक उत्पन्न होते ही सात पैंड चलता गया । कहते हैं कि उसने जहाँ पैर रक्खे, वहीं धरती मातासे सुन्दर कमलपुष्प प्रकट होते गये । राजाने अपने समस्त अर्थ सिद्ध हुए जानकर उसका नाम 'सिद्धार्थ' रक्खा । मातृ-वंश गौतमवंशका होनेसे वह बालक गौतम कहलाया ।

सिद्धार्थके जन्मसे सातवें दिन महामायाका देहावसान हो गया । तदनन्तर महाप्रजावतीने बालकका बड़े स्नेहसे पालन-पोषण किया । बालक दिनों-दिन सभी दिशाओंमें प्रगति करने लगा । सारी शिक्षा मानो वह साथ ही लेकर जन्मा था । महान् कुशाग्रबुद्धि, तीव्रतम स्मरण-शक्ति, न्याय-तर्कादिमें भी असाधारण पाण्डित्य, धनुर्विद्यामें निपुणता । सभी कुछ विलक्षण । सबसे विलक्षण वस्तु तो राजकुमारका अहिंसा-सुशोभित दयाद्रवित करुण-कोमल हृदय था । वे आखेट करने जाते तो मृगपर बाण न चलाकर उसे भाग जाने देते । घोड़ा थककर हाँफ जाता तो उतरकर उसका पसीना पोंछते, धीरे-धीरे सहलाते और बड़े प्यारसे पुचकारकर थपकी देते ।

एक दिन राजकुमार बगीचेमें टहल रहे थे । बाणसे बिंधा एक हंस उनके पास आ गिरा । उन्होंने उसे उठाकर गोदमें ले लिया और बाण निकाला । राजकुमारके चचेरे भाई देवदत्तने उस उड़ते हंसको बाण मारकर गिराया था । देवदत्तने आकर उसे माँगा और कहा कि 'यह मेरा शिकार है, मैंने इसपर निशाना लगाया था । अतः इसपर मेरा अधिकार है ।' सिद्धार्थने कहा—'पक्षीको मारनेवालेकी अपेक्षा उसे बचानेवालेका उसपर अधिक अधिकार है ।' उन्होंने हंस नहीं दिया और जब हंस उड़ने योग्य हुआ, तब उसे उड़ा दिया । देवदत्तने इस बातसे अपने मनमें वैर मान लिया ।

लक्ष्यवेध-परीक्षामें उत्तीर्ण होनेपर राजकुमारी यशोधराके साथ उनका विवाह हो गया । राजा शुद्धोदनने राजकुमारको वैराग्य न हो जाय,—इस भयसे उन्हें सदा भोगसुखमें लिप्त रखनेका पूरा आयोजन कर दिया । सुन्दर राजप्रासाद, विभिन्न ऋतुओंका सौन्दर्य, विहरते हुए मनोरम नील कमलों-

से पूर्ण सरोवर, नित्य नवीन वस्त्राभूषण, स्वस्थ, सबल और आज्ञाकारी सदा उपस्थित सेवक-समुदाय, सेवार्थ विविध वस्त्रालंकारोंसे सुसज्जित तरुणियोंकी मण्डली, नित्य मनोहर गान, वाद्य और नर्तन। अपनी जानमें कुछ भी कसर नहीं रक्खी राजाने। परंतु विधाताका विधान कुछ और था। सिद्धार्थका अवतार साधारण मानव प्राणियोंकी भाँति विषय-भोगोंमें प्रलिप्त रहनेके लिये नहीं, वरं स्वयं त्याग-वैराग्यके मूर्तिमान् स्वरूप बनकर जगत्के प्राणियोंको दुःख-दावानलसे बचानेके लिये हुआ था। अतः वैसा ही संयोग बन गया।

एक दिन वे शहरमें घूमने निकले। बड़ी व्यवस्था की गयी थी कि राजकुमारके सामने कोई ऐसा दृश्य न आने पाये, जिससे उनको वैराग्यकी प्रेरणा मिले। पर दैव-विधानसे एक वृद्ध सामने आ गया। उन्होंने देखा—श्वेत केश हैं, बदनपर झुर्रियाँ पड़ी हैं, दाँत नहीं हैं, गाल पिचके हैं, कुबड़ा शरीर है, धँसी आँखें हैं, उनमें गीड़ भरी है और जल बह रहा है, देहमें मांस नहीं, चमड़ेसे ढका हड्डियोंका ढाँचा मात्र है, फटा मैला चिथड़ा लपेटे है, हाथमें लाठी है, बड़ी कठिनतासे चल पाता है। राजकुमारने पूछा 'छन्दक! यह कौन है?' छन्दकने कहा—'कुमार! यह वृद्ध है, कभी यह भी जवान था, सुन्दर था, सबल था, वृद्धावस्थाने इसकी यह दशा कर दी है।' राजकुमारने व्यथित होकर फिर पूछा—'क्या यह वृद्धावस्था सभीकी होती है? क्या मेरी भी यही दशा होगी?' छन्दकने कहा—'जन्मके साथ जरा लगी रहती है। मनुष्य जीवित रहा तो बूढ़ा होगा ही, आप हों चाहे मैं।' राजकुमार सुनकर सहम गये। अहो! जवानीका सारा मद चूर्ण हो जाता है इस स्थितिमें। मेरी भी यही दशा होगी, यशोधराकी भी और गङ्गा-गौतमी आदि सखियोंकी भी। हाय!' राजकुमारने कहा—'छन्दक! लौट चलो।'

राजाज्ञासे दूसरे दिन फिर राजकुमार छन्दकको साथ लेकर सेठ और मुनीमका वेश बनाकर निकले। आज एक रोगी मिल गया, जो पीड़ासे छटपटा रहा था। उसका सारा शरीर क्षत-विक्षत था, काँप रहा था, बड़ी बुरी दशा थी। राजकुमारके पूछनेपर छन्दकने बताया—'यह रोगी है, इसीसे इतना परवश और दुखी हो रहा है। रोग भी सभीको हो सकता है।' राजकुमारको जवानीपर तो अनास्था हो ही गयी थी। शरीरके स्वास्थ्यका भरोसा भी जाता रहा। तीसरी बार एक मुर्दा मिला। 'राम नाम सत्य है' बोलते हुए चार आदमी अर्थीको उठाये लिये जा रहे थे। घरके लोग पीछे-पीछे रोते हुए चल रहे थे। मुर्दा श्मशानमें ले जाकर जला दिया गया। राजकुमारने पूछा—'क्या सबकी यही गति होगी?' छन्दकने कहा—'जो जन्मा है, वह तो मरेगा ही।' राजकुमारका हृदय वैराग्यसे भर गया। वे महलमें लौट आये। सारे विलास-उल्लास, नृत्य-गान बंद हो गये। फिर एक बार राजकुमारने एक संन्यासीको देखा, उसने बताया कि वह जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिसे छूटनेके प्रयत्नमें लगा है। राजकुमारको यह बात बहुत अच्छी लगी। उन्होंने गृह-त्यागका निश्चय कर लिया।

राजाको पता लगा तो वे बहुत दुखी हुए और राजकुमारका मन बदलनेके लिये विविध प्रयास करने लगे। विविध प्रकारके भोगोंसे लुभाये जानेका कुछ भी असर राजकुमारपर नहीं हुआ। पिता शुद्धोदनने बहुत तरहसे समझाया-बुझाया पर वे अपना निश्चय छोड़नेको तैयार नहीं हुए। राजाके बहुत कहने-सुननेपर राजकुमारने कहा—'अच्छा, यदि ऐसी ही बात है तो आप मेरी चार शर्तें स्वीकार कर लीजिये— मैं तपोवनमें नहीं जाऊँगा।

न भवेन्मरणाय जीवितं मे
विहरेत् स्वास्थ्यमिदं च मे न रोगः।
न च यौवनं मा क्षिपेज्जरा मे
न च सम्पत्तिमिमां हरेद् विपत्तिः॥

अर्थात् 'मैं कभी मरूँ नहीं, मैं कभी बीमार न पड़ूँ, मैं कभी बूढ़ा न होऊँ और मेरी यह राज्य-सम्पत्ति सदा बनी रहे।'

राजाने इन शर्तोंको स्वीकार करनेमें असमर्थता प्रकट की। कुमारका निश्चय और भी दृढ़ हो गया। वे एक रातको अपनी प्रियतमा पत्नी यशोधरा और नवजात पुत्र राहुलको छोड़कर जानेके लिये तैयार हो गये। वे उस समय अधीर हो रहे थे मानो उन्हें मायापाशको तोड़कर तुरंत चले जानेके लिये कोई प्रबल और अपरिहार्य प्रेरणा प्राप्त हो रही है। यशोधरा मीठी नींदमें सो रही थी मानो बेला-पुष्पोंकी उज्ज्वल धवल चादरमें गुलाबोंका ढेर ढुलका हुआ हो। पास ही शिशु राहुल ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो गुलाबकी मृदु सुन्दर कली मुसकरा रही हो। कुमारने उनको देखा, फिर आँखें फेर लीं। पुनः देखा—बस, 'यह सारा मायाजाल है, मेरा बन्धन है।' उन्होंने तीन बार पलंगकी परिक्रमा की और पत्नी, पुत्र, पिता, परिवार तथा समृद्धिके सारे बन्धनोंको तोड़कर वे तुरंत नीचे उतर आये। महलके नीचे जाकर सारथि छन्दकको

जगाया और उसके द्वारा कन्थक घोड़ेको मँगवाकर वे उसपर सवार हो गये। कपिलवस्तुसे पैंतालीस कोस अनामाके उस पार जाकर उन्होंने छूरेसे अपने लम्बे केश काट डाले। राजसी वस्त्राभूषणोंको उतारकर सारथिको दे दिया और घोड़ेके साथ उसे लौटा दिया।

सच्चे धर्मकी खोजमें वे बहुतसे विद्वानोंके पास गये पर कहीं संतोष न मिलनेपर वनमें एक वृक्षके नीचे बिना खाये-पीये बैठकर ध्यान करने लगे। कठोर तपसे उनका शरीर सूख गया।

एक दिन उस वनमेंसे कुछ स्त्रियाँ गाती हुई निकलीं—'वीणाके तारको इतना मत खींचो कि वह टूट जाय और इतना ढीला भी मत छोड़ो कि उससे स्वर न निकले।' इस गीतसे बुद्धने शिक्षा ली और कठोर तपका मार्ग छोड़कर 'मध्यम मार्ग' ग्रहण किया।

नाना प्रकारके बाधा-विघ्नोंको हटाते हुए, मार तथा राक्षसोंको अपनी दृढ़ प्रज्ञासे पराजित करते हुए उन्होंने बुद्धत्व प्राप्त किया पैंतीस वर्षकी अवस्थामें बोधिवृक्षके मूलमें। फिर तो जगत्के भूले प्राणियोंके उद्धारार्थ वे निकल पड़े। संघ बने। पैंतालीस वर्षतक इस धराधामपर सनातनधर्मका एक आकर्षक रूपमें विविध भाँतिसे प्रचार करके दुःखविदग्ध प्राणियोंको शान्ति प्रदान करते रहे और अन्तमें कुशीनगरमें आकर मल्लोंके शालवनमें दो शाल वृक्षोंके बीचमें भिक्षु आनन्दके द्वारा बिछाये हुए चीवरपर लेट गये और लेटे-लेटे ही उन्होंने महापरिनिर्वाण प्राप्त किया।

बुद्ध नास्तिक नहीं थे

भगवान् बुद्धने न तो किसी नये धर्मका प्रवर्तन किया और न अपनेको कभी किसी नवीन धर्मका संस्थापक या अवतार ही बतलाया। उस समयके देश-कालकी परिस्थितिको देखकर उन्होंने सनातनधर्म या हिंदू-धर्मकी ही एक विशेष प्रकारसे व्याख्या की। वस्तुतः उन्होंने स्वयं धर्मका आचरण करके लोगोंको धर्मकी शिक्षा दी। उन्होंने जो कुछ उपदेश दिया, सब हिंदू-धर्मके प्राचीन ग्रन्थ—वेद, उपनिषद्, स्मृति, गीता आदिके आधारपर ही दिया।

उन्हें नास्तिक, अनात्मवादी, दुःखवादी, अनीश्वरवादी और मरणोत्तर आत्माका अस्तित्व न माननेवाले कहा जाता पर ऐसी बात वास्तवमें है नहीं। उन्होंने आत्मा, मुक्ति, पुनर्जन्म, कर्मानुसार जन्म, ब्रह्मप्राप्त पुरुषकी स्थिति आदिको माना है और उनके सम्बन्धमें वही बातें कही हैं जो परम्परासे हिंदूधर्ममें मानी जाती हैं।

उदाहरणार्थ वेद-विरोधकी बात लीजिये—'बुद्धने (हिंसात्मक) कर्मकाण्डका विरोध किया। सो वस्तुतः सनातनधर्ममें भी ज्ञानके उच्च स्तरपर कर्मकाण्डरूप यज्ञोंको बहुत ऊँचा स्थान नहीं दिया गया है। वैदिक यज्ञके सम्बन्धमें मुण्डकोपनिषद्में आया है—'प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपाः।' और इन अदृढ़ नौकापर सवार होनेवालोंकी निन्दा की गयी है। गीतामें भगवान्ने भी कहा है—

'त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।' (२।४५)

—और—

'यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।'
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः॥ (२।४२)
यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।
तावान् सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः॥ (२।४६)

—इनमें सकाम कर्मकाण्डका विरोध किया गया है, ज्ञानमय वेदका विरोध नहीं।

बुद्ध भगवान्ने जगत्को दुःखमय माना है और इस दुःखसे त्राण पानेके लिये मार्ग बताया है। यही बात सारे सनातनधर्मके शास्त्रोंमें है। गीतामें भगवान्ने जगत्को दुःखमय बतलाया है—

'दुःखालयमशाश्वतम्,' 'अनित्यमसुखं लोकम्।'
ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते॥
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥ (५।२२)

पर इसका अर्थ यह नहीं है कि दुःखातीत परम सुख नहीं है। भगवान्ने 'आत्यन्तिकसुखमश्नुते' (गीतामें) कहा है, वैसे ही बुद्ध भगवान् भी कहते हैं कि 'जीव जहाँ पाशमुक्त होकर, विसंयुक्त होकर निर्वाणमें प्रतिष्ठित है, वहाँ विपुल सुख, अद्भुत परमानन्द—भूमानन्द है 'प्रामोद्य बहुल' (पामोज्ज बहुलो)।

बुद्धदेवने हिंदूधर्मकी भाँति ही स्वर्ग-नरक माने हैं। वे कहते हैं—

'सग्गं सुकतिनो यन्ति निरये पापकम्मिनो' 'अभूतवादी निरयं उपेति।' (धम्मपद)

'पुण्यात्मा पुरुष स्वर्गमें जाते हैं और पापकर्मी लोग नरकमें । असत्यवादी नरकमें जाते हैं।' हिंदू-धर्मकी भाँति ही उन्होंने कर्मभेदसे पुनर्जन्म माना है और देव, मानुष, नरक, पैशाच, पशु तथा तिर्यक् योनिकी प्राप्ति वैसे ही बतलायी है, जैसे छान्दोग्य-उपनिषद्में उत्तम कर्म करनेवालोंके लिये उत्तम योनि और नीच कर्म करनेवालोंके लिये कूकर-सूकरादि नीच योनिकी प्राप्ति कही है ।

बुद्धदेवको शून्यवादी कहते हैं—पर उनका शून्य वस्तुतः ब्रह्मवादियोंका अनिर्वचनीय अचिन्त्य ब्रह्म ही है—

'यच्छून्यवादिनां शून्यं ब्रह्म ब्रह्मविदां च यत् ।
'क्योंकि उन्होंने शून्यको 'अक्षय' कहा है ।'
'ये च सुभूते ! शून्या अक्षया अपि ते ।'

जिसका कभी क्षय न हो, व्यय न हो, अपचय-उपचय न हो, वह अजर-अमर अक्षय शून्य है । यह शून्य ब्रह्मरूप है, यही परमानन्दस्वरूप है । गीतामें कहा है—'सुखमक्षयमश्नुते ।'

अब रहा उनका निर्वाण—सो वस्तुतः ब्राह्मी स्थितिको ही बुद्ध भगवान्ने निर्वाण कहा है—यही निर्वाण गीतामें आया है—'ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति' ।

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥

(५ । २४—२६)

इस निर्वाणकी प्राप्तिके लिये बुद्धदेवने भी राग-द्वेष-मोह आदिका त्याग साधन बतलाया है । निर्वाणकी प्राप्ति जीवित अवस्थामें भी होती है, उसे 'सोपाधिशेषनिर्वाण' कहा है, यही हिंदू-धर्मकी 'जीवन्मुक्ति' है और देहान्तके बाद होनेवाले निर्वाणको 'अनुपाधिशेषनिर्वाण' कहा है, यही विदेहमुक्ति है।

निर्वाणका स्वरूप बतलाते हुए बुद्धदेवने कहा है—

'हे भिक्षुओ ! यहाँ अजात, अभूत, अकृत एवं असंघटित है—अजातं अब्भूतं अकतं अब्संखतं । वहाँ न वायु है, न जल है, न अग्नि है, न यह संसार है, न यह चन्द्रमा है, न सूर्य है, वहाँ सब दुःखोंका अन्त है । विपुल आनन्द है ।' ठीक यही बात उपनिषद्में आयी है—

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं
नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥

(कठ० २ । ५ । १५, मुण्डक० २ । १०)

'यत्र न सूर्यस्तपति, यत्र न वायुर्वाति, यत्र न चन्द्रमा भाति, यत्र न नक्षत्राणि भान्ति, यत्र नाग्निर्दहति, यत्र न मृत्युः प्रविशति, यत्र न दुःखानि प्रविशन्ति, सदानन्दं परमानन्दं शान्तं शाश्वतं सदाशिवं ब्रह्मादिवन्दितं योगिध्येयं परं पदम् ।' (बृहज्जाबाल-उपनिषद् ८ । ६)

गीता भी कहती है—

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः । (गीता १५)

बुद्धदेव कहते हैं—वहाँ इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार नहीं है, सो ठीक ही है । इसीसे तो उपनिषद्में उसे 'नेति-नेति' कहा है और बताया है कि वह इन्द्रियोंसे अतीत, लक्षणसे अतीत, मनसे अतीत, वचनसे अतीत है ।

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति न मनो न विद्मो ।

(केन उप० १ । ३)

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ।

(ब्रह्मोपनिषद्)

पर इसका अभिप्राय यह नहीं है कि वह कुछ नहीं है । 'है' अवश्य, पर बतलाया नहीं जा सकता । इसीसे बुद्धदेव चुप रहे हैं । पर उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया है कि उस निर्वाणमें परम सुख है—भूमानन्द है—वहाँ अमानुषी रति, विपुल सुख तथा परमानन्द भूमानन्दस्वरूप है, सारे दुःखोंका अन्त है, सुखमय शान्तपद है ।

सम्पस्सं विपुलं सुखं,
अमानुषी रती होति सम्माधम्मं विपस्सतो ।
निब्बाणं परमं सुखं ।
ततो पामोज्ज बहुलो दुक्खस्सन्तं करिस्सति ॥
पामोज्ज बहुलो भिक्खू पसन्नो बुद्धसासने ।
अधिगच्छे पदं सन्तं संखारूपसमं सुखम् ॥

(धम्मपद)

अतएव बुद्धदेवका निर्वाण—हिंदूधर्मका ब्रह्मस्वरूप ही है । वह निर्वाण अतर्क्य, अवर्ण्य, अकथ्य, अचिन्त्य होने तथा

वहाँ व्यक्तिभावका विलोप एवं जीवभावका अभाव होनेपर भी 'नास्तित्व' नहीं है, यह अक्षय परम सुखरूप है। इस निर्वाणको प्राप्त पुरुषको ही 'अर्हत' (मुक्त) कहा गया है।

इससे सिद्ध है कि भगवान् बुद्धने अपने जीवनमें वैदिक विचारधाराका विरोध न करके उसीका अनुसरण किया था। उनके निर्वाणके बाद अपनेको बुद्धके अनुयायी माननेवाले लोगोंने स्वेच्छाचार किया। वेदका विरोध प्रत्यक्ष किया। वे एक प्रकारसे घोर वाममार्गी हो गये। इसीसे इस मतको 'नास्तिक' माना गया, इसका विरोध-बहिष्कार हुआ और फलतः पतन भी हुआ!

बुद्धकी शिक्षा

बुद्ध भगवान्ने चार 'आर्य सत्य' बतलाये हैं—दुःख, दुःखसमुदाय (दुःखकी उत्पत्ति), दुःख-निरोध (दुःखसे मुक्ति) और दुःखनिरोध-मार्ग (दुःख-मुक्तिका उपाय)। दुःख-मुक्ति ही निर्वाण है, उसका अमोघ उपाय बतलाया गया है—आर्य-आष्टांगिक मार्ग—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीव, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि।

सम्यक् दृष्टिका अर्थ है—यथार्थ विचार-दृष्टि, अनित्य-नित्य, अच्छे-बुरेकी पहचान, चार आर्य सत्योंका वास्तविक परिचय।

सम्यक् संकल्प—काम-क्रोध-हिंसा आदि दोषोंसे बचे रहनेका दृढ़ संकल्प।

सम्यक् वाणी—असत्य न बोलना, चुगली-निन्दा न करना, कठोर वचन न बोलना, व्यर्थ न बोलना। सत्य, मित, हित, मधुर वाणी बोलना।

सम्यक् कर्मान्त—चोरी, व्यभिचार, प्राणिहिंसा आदि न करना।

सम्यक् आजीविका—शस्त्र, प्राणी, मांस, मद्य और विषका व्यापार न करना; अधर्म, अन्याय, हिंसासे पैसा न कमाना।

सम्यक् व्यायाम—बुरे विचारोंको उत्पन्न न होने देना, उत्पन्न बुरे विचारोंका नाश करना, अच्छे विचारोंको उत्पन्न करना, उत्पन्न अच्छे विचारोंकी रक्षा करना—उन्हें बढ़ाना। मानसिक और शारीरिक दुर्बलता न आने देना।

सम्यक् स्मृति—सदा सावधानी। क्या करना चाहिये, क्या नहीं करना चाहिये—इसकी स्मृति। कार्य करते समय भी यह ज्ञान कि मैं अमुक कार्य कर रहा हूँ।

सम्यक् समाधि—शुभ कर्मोंमें, सत्यमें चित्तका समाधान—निरोध।

इसीके साथ भगवान् बुद्धने गृहस्थ-भिक्षु दोनोंके लिये पाँच शील बताये हैं—हिंसा-विरति, मिथ्याभाषण-विरति, स्तेय-विरति, व्यभिचार-विरति और मादक द्रव्य-विरति। किसी प्राणीकी हिंसा न करना, झूठ न बोलना, चोरी न करना, व्यभिचार न करना और नशेकी किसी चीजका सेवन न करना।

इसके अतिरिक्त पाँच शील केवल भिक्षुओंके लिये और हैं—वे दस शीलोंका पालन करें। वे पाँच हैं—दोपहरके बादका भोजन न करना, नाच-गानका त्याग, माला आदि श्रृङ्गारका त्याग, बढ़िया शय्याका त्याग और सोने-चाँदीका त्याग। ये शील योगदर्शनके यम-नियमके आधारपर ही हैं। आजकल जो अन्ताराष्ट्रिय जगत्में पंचशीलकी चर्चा हो रही है, उनका मूल भी ये बुद्ध भगवान्के उपर्युक्त पंचशील ही हैं।

निर्वाणकी प्राप्तिके लिये मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षाकी शिक्षा दी गयी है, जो योगदर्शनमें आती है। समान स्थितिवालोंसे मित्रता, दुखियोंके प्रति करुणा, सुखी लोगोंको देखकर प्रसन्नता, अपने प्रति बुराई करनेवालोंके प्रति उपेक्षा। इससे चित्तके राग-द्वेष-मोहादि मलोंका नाश होता है और साधक निर्वाणपदके योग्य होता है।

बुद्ध भगवान्ने आत्माका प्रतिपादन चाहे उतना न किया हो पर उन्होंने अपने अहिंसा तथा दयासे पूर्ण हृदयसे, दया-दृष्टिसे प्राणीमात्रमें एकात्माका अनुभव करके, जीवनको सहज सर्वभूतहितमें लगाकर वास्तविक आत्मदर्शनका परिचय दिया है, जो सबके लिये अनुकरणीय है। एक बात और है—बुद्ध भगवान्ने जान-बूझकर ही साध्यका निर्णय न करके साधनपर विशेष जोर दिया है। साधन यथार्थ होनेपर साध्यकी प्राप्ति तो अपने-आप ही हो जायगी और तभी साध्यके यथार्थ स्वरूपका पता लगेगा। आत्मा, ब्रह्म क्या है, संसार कैसे बना, कब बना, संसार अनादि अनन्त है या अनादि सान्त है, इसका कोई कर्ता है या नहीं, वह सगुण है या निर्गुण, आदि विषयोंपर उन्होंने कहना उचित नहीं समझा। वास्तवमें कहनेसे ये समझमें आते भी नहीं। इनका सम्यक् ज्ञान तो साधनसम्पन्न पुरुषको अपने-आप ही होता है। 'यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः'। उन्होंने समझा कि इन दार्शनिक प्रश्नोंकी उलझनमें पड़कर किसी मताग्रहको स्वीकार करना तथा

जीवनके परम लक्ष्यकी प्राप्तिके साधनसे वञ्चित रहकर खण्डन-मण्डन करनेकी अपेक्षा साधनमें लगना—मार्ग तै करना श्रेयस्कर है। मनुष्यको चुपचाप अपने जीवनके परम लक्ष्यकी प्राप्तिमें ही लगे रहना चाहिये। इसीमें बुद्धिमानी है। उन्होंने एक बार भिक्षुओंसे इस आशयकी बात कही थी—"किसी आदमीके विषबुझा बाण लगा हो और बाण निकलवानेके लिये उसे किसी वैद्यके पास ले जाया जाय। वहाँ वह यदि यह कहे कि 'मैं तो बाण तभी निकलवाऊँगा जब मुझे इसका पूरा पता लग जायगा कि बाण चलानेवाला कौन था, किस जातिका था, मोटा था या दुबला; उसने बाण क्यों मारा, कब मारा।' तो उसे मूर्ख ही माना जायगा। वह इन प्रश्नोंका उत्तर जाननेके फेरमें पड़ेगा तो उत्तर प्राप्त होनेके पहले ही मर जायगा। अतएव उसको जैसे इन प्रश्नोंके उत्तर पानेके बखेड़ेमें न पड़कर बाण निकलवाना चाहिये, वैसे ही तुम लोगोंको भी इन प्रश्नोंके चक्करमें न पड़कर राग-द्वेष-मोहसे छूटनेका उपाय करना चाहिये।"

इस दृष्टान्तसे यह सिद्ध होता है कि कोई बाण मारनेवाला अवश्य है और उसने बाण मारा है। पर उसका पता लगानेकी अपेक्षा पहले बाण निकलवाना उचित है; इसी प्रकार सृष्टिकर्ता ईश्वर तो है ही; उसने सृष्टिकी रचना भी की ही है, परंतु अल्पजीवनमें उसका पता लगानेके पहले संसारसे मुक्त होनेकी साधना करनी चाहिये। मुक्त होनेपर आप ही पता लग जायगा कि वह कौन है, कैसा है। अतएव बुद्धदेव नास्तिक नहीं थे। वे सनातन हिंदू-धर्मके ही प्रचारक-प्रसारक थे और बुद्ध-धर्म भी कोई अलग धर्म नहीं है, वह विशाल वटवृक्षरूप हिंदूधर्मकी ही अलग दीखनेवाली एक महत्त्वपूर्ण शाखा है।

यह बड़े ही आनन्दकी बात है कि बुद्ध भगवान्‌के जन्म तथा निर्वाण-स्थान भारत तथा भारतेतर देशोंमें भी आज बुद्ध-महापरिनिर्वाण दिवसका महान् उत्सव मनाया जा रहा है। यद्यपि हमारी धर्म-निरपेक्ष सरकारने उदारतावश अपने 'सेकुलेरिज्म' (धर्मनिरपेक्षता) की सीमासे आगे पग बढ़ाया है, परंतु यह शुभ चिह्न है। आज सरकारके द्वारा बुद्ध-जयन्ती मनायी जाती है तो आगे चलकर हम कोटि-कोटि मनुष्योंके नित्य आराध्य भगवान् श्रीराम-कृष्णकी जयन्ती तथा शङ्कर-रामानुज आदि आचार्योंकी जयन्ती भी सरकारके द्वारा मनायी जानेकी आशा कर सकते हैं। पर एक बात अवश्य विचारणीय है। उत्सव मनाना, प्रभात फेरी निकालना, प्रवचन करना, नारे लगाना, बुद्धके जीवनसम्बन्धी नाटक-गान-वाद्य करना, बुद्धधर्मकी महानताके गुण गाना, भगवान् बुद्धकी प्रशंसा करना—उनके स्मारकादि बनवाना सभी उत्तम हैं, परंतु जबतक हम भगवान् बुद्धकी शिक्षाओंको, उनके जीवनके आदर्शको अपने जीवनमें नहीं उतारते, उतारनेका प्रयत्न नहीं करते, तबतक हमारा यह आयोजन आत्म-विडम्बना ही है। बुद्ध भगवान्‌का वैराग्य, उनकी दयार्द्रता, उनकी सर्वभूतहितमें सहज रति, उनकी अहिंसा, उनका राग-द्वेष-मोह-त्याग, उनकी समता, उनका सर्वस्व-त्याग आदि महान् गुणोंमेंसे कुछ भी हमारे जीवनमें प्रकट हो जाय तो हमारा आजका यह घृणा, द्वेष, हिंसा, अनाचारसे पूर्ण और अणु तथा उद्‌जनबमोंसे आतङ्कित संसार प्रेम और आनन्दका स्वर्ग बन सकता है। तभी जयन्ती मनाना भी सार्थक है। पर यदि बुद्धकी जयन्ती मनाना भी हमारा एक बाहरी दिखावा या मत-प्रचार, खुले स्वेच्छाचार-अनाचारके प्रचार और बौद्धमतावलम्बियोंकी संख्या-वृद्धिका साधन ही रहा या इसका उपयोग इसीमें किया गया तो हम अपनेको और मानवसमाजको धोखा ही देंगे। अतः हमें भगवान् बुद्धको श्रद्धाञ्जलि अर्पण करनेके साथ ही यह भी निश्चय करना चाहिये कि हम उनके पवित्र त्याग, दया, अहिंसा,* और राग-द्वेषरहित सर्वभूतहितके आदर्शको जीवनमें उतारें।

भगवान् बुद्धकी जय हो!

---

* आजके सर्वभक्षी बौद्ध देशोंमें और बुद्ध भगवान्‌के अनुयायियोंमें हिंसाका जो प्रचार बढ़ा हुआ है, वह बड़ा ही दुःखद और बुद्धकी जीवन-शिक्षाके सर्वथा विरुद्ध है। बुद्धके भक्तोंको बुद्धजयन्तीके इस पवित्र अवसरपर जीवनभर मांसाहार तथा प्राणिहिंसासे सर्वथा विरत होनेकी प्रतिज्ञा करनी चाहिये।

हमारा वैज्ञानिक धर्म

(लेखक—श्रीजयेन्द्रराव भ० दूरकाल एम० ए०, डी० ओ० सी०, विद्यावारिधि)

हमारे आदि मानव-धर्मको कुछ लोग 'सनातनधर्म' कुछ लोग 'वेद-धर्म' कुछ लोग 'हिंदू-धर्म' कुछ लोग 'ब्राह्मण-धर्म' इत्यादि विविध नामोंसे पुकारते हैं। यह धर्म वर्तमान धर्मोंमें सबसे प्राचीन है। यही नहीं, बल्कि सबसे पूर्ण, शृङ्खलाबद्ध और वैज्ञानिक पद्धतिके अनुकूल है। यह इसके तथा अन्य धर्मोंके अभ्याससे जान पड़ता है। हमलोग यहाँ इसकी वैज्ञानिकता-की आलोचना करनेका यत्न करेंगे। वैज्ञानिक पद्धतिमें तीन मुख्य वस्तुएँ होनी चाहिये, ऐसा कहा जाता है। जैसे (१) व्याख्या अथवा लक्षण-विवेक, (२) विभागोंका विचार-विवेक और (३) याथातथ्यका अनुभव। धर्म या पन्थका विषय व्यक्ति तथा समाजसे सम्बन्धित है, इसलिये इसमें राग-द्वेष तथा अभिनिवेशके लिये बहुत अवकाश होता है। अतएव मैं अन्य धर्म-पन्थोंके साथ तुलना करनेका काम बहुधा पाठकोंपर ही छोड़ दूँगा, अथवा संकेतमात्र कुछ कहूँगा। पर समाधानरूपमें इतना ही कहना है कि यह धर्म अखिल मानव-जातिका मूल ईश्वरोक्त प्राचीन धर्म है, परम्परासे चलता आ रहा है, आज भी मानवोंकी बड़ी संख्याके धर्मरूपमें विद्यमान है और इस युग—कल्पमें भी इसने अद्भुत माहात्म्य, अज्ञात भौतिक शक्तियों तथा अद्वितीय महामानवोंको प्रकट किया है, अतएव सबका यह अपना ही मूल मान्य और श्रद्धेय धर्म है।

तत्त्व-दर्शन

किसी भी धर्म या जीवन-नियामक आदर्श समुच्चयके पीछे परिपक्व तत्त्वदर्शनकी आवश्यकता है। तत्त्वदर्शन अपने भौतिक अर्थमें—अकाट्य, अखण्डनीय अर्थमें परम सत्यका निर्वाचक होना चाहिये। परम सत्य वह है जो देश, काल और वस्तुसे बाधित न हो। भौतिक विज्ञान समस्त देश, काल, वस्तुसे बाधित होनेके कारण और उसकी इकाई या सिद्धान्त जैसे बिन्दु, रेखा, दृश्यकी वास्तविकता, बुद्धिकी सर्वोपरिता इत्यादि माने हुए तथा परिगृहीत होनेके कारण विज्ञानको हम परम सत्यके दर्शनके रूपमें नहीं गिनते। इस परम सत्यका निर्वचन अथवा तत्त्व-दर्शन चार वेदोंके महा-वाक्योंमें अथवा अर्द्ध श्लोकमें सुप्रबद्ध रूपमें किया गया है। हमारे यहाँ विचारके लिये तीन पदार्थ गृहीत होते हैं—जीव, जगत् और जगदाधार। द्रष्टा, दृश्य और इन दोनोंका अधिष्ठान। इन तीनोंका निराकरण अर्द्ध श्लोकमें इस प्रकार किया गया है—

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।

परमात्म-तत्त्व, ब्रह्म, अधिष्ठान सत्य है; जगत्, संसार दृश्यपदार्थ मिथ्या है, नश्वर है, कल्पित है, वस्तुतः मायामात्र है। इस परम सत्यका अनुभव प्राप्त होना बीजगणितके सिद्धान्तके समान होना कठिन है। परंतु इसके ज्ञानका लाभ यह है कि इसके द्वारा मनुष्यको—जीवको अपनी भूमिका, स्थान, ध्येय, कर्तव्य, उपासितव्य और ज्ञातव्य—ये सब अच्छी तरहसे स्पष्ट हो जाते हैं और भ्रमके मार्गपर भटक जानेकी सम्भावना कम रह जाती है। वेदोंके महावाक्यों-में भी इसी तत्त्वज्ञानका स्पष्टीकरण है। विस्तारकी यहाँ आवश्यकता नहीं।

विश्व-दर्शन

विश्व मायारूप है, तथापि दीखता है। दृश्यमान है इसलिये इसका विवेक भी व्यावहारिक रीतिसे करना है। क्योंकि हमारे सामनेका बड़ा दृश्य—यह दृष्ट है। और मायारूप होनेसे यद्यपि अप्रमेय है, अनिर्वचनीय है और सदसत्‌रूप है, तथापि जीवको संस्पर्श करता है और सुख-दुःखका हेतुरूप है तथा परम चेतनरूप अधिष्ठानकी ही लीला है अतएव नीर-क्षीर-विवेकसे इसका भी विवेक-दर्शन करना आवश्यक है। मायारूप होनेके कारण अनेकों रूपोंमें इसका वर्णन, विचार या विभाग किया जा सकता है। एक मुख्य विभाग प्रकृति और पुरुषरूपमें—अथवा जड और चेतनरूपमें है। जो स्वयं शक्तिमान् या गतिमान् है वह चेतन है, और जो दूसरेकी शक्तिसे शक्तिमान् या गतिमान् होता है, वह जड है। चेतन सदा अदृश्य अथवा इन्द्रियोंके अगोचर होता है और जड अधिकांशमें दृश्य और इन्द्रियगोचर होता है। इतना होनेपर भी पुरुष यानी चिन्मय आत्मा सब विश्वमें व्यापक होनेके कारण प्रकृति-पुरुषका विवेक साधारण मनुष्योंके लिये दुर्विभाव्य और केवल विचारगम्य हो जाता है। जैसे सूर्यका बिम्ब तो प्रकृतिका वैभव है, परंतु उसका अधिष्ठाता देव चेतन पुरुष है। शास्त्रोंमें प्रकृति-पुरुषका बहुत गम्भीर और गहन विचार-विवेक किया गया है। ब्रह्म तथा माया, ईश्वर और उसकी शक्ति, पुरुष और स्त्री इत्यादिकी उपमाके

द्वारा या प्रतीकरूपमें उनका अनुभव करवाया गया है। इसके बाद विश्वदर्शनकी बहुत ही सुन्दर, व्यापक और तात्त्विक पद्धति गुण-विवेक है। उसको भी श्लोकार्द्धमें ही कहा है। प्रकृतिके तीन गुण हैं—सत्त्व, रजः और तमः—ये प्रकृतिके विकृतरूप हैं और इसमें इनके समूहोंमें क्षोभ हुआ करता है —

एष वैकारिकः सर्गो गुणव्यतिकरात्मकः।

यह सारी सृष्टि विकारी है, त्रिगुणात्मक है और उन गुणोंमें क्षोभ—ऊर्मियाँ—उछाल न्यूनाधिक रूपमें हुआ करती हैं। ये सत्त्व, रजः और तमोगुणके चिह्न निम्न प्रकारसे हैं—

सत्त्वगुण	रजोगुण	तमोगुण
प्रकाश-ज्ञान	राग-तृष्णा	अज्ञान-मोह
सुख-शान्ति	कर्म-दुःख	प्रमाद-निद्रा
शम	काम	क्रोध
दम	इच्छा	लोभ
तितिक्षा	मद	अनृत
तप	तृष्णा	हिंसा
सत्य	स्तम्भ	याचना
दया	आशिष	दम्भ
स्मृति	इन्द्रियसुख	क्लम, थकान
तुष्टि	मदोत्साह	कलि-क्लेश
त्याग	यश	शोक-मोह
अस्पृहा	प्रीति	विषाद-दुःख
श्रद्धा	हास्य	निन्दा
लज्जा	वीर्य	आशा
दया	बल	भय
आत्मसंतोष	उद्यम	आलस्य

ये सारे लक्षण स्पष्ट दिखायी देने योग्य हैं और उसके द्वारा किस कोनेमें कौनसे गुण तीव्र या मृदुरूपमें यह भी दिखलायी दे सकता है। रज और तम इन दोनों गुणोंको सत्त्व-गुणके द्वारा निगृहीत किया जा सकता है और मिश्र सत्त्व या मलिन सत्त्वको शुद्ध सत्त्वके द्वारा वशमें कर सकते हैं। सब पदार्थोंमें सात्त्विक, राजस और तामस—ऐसे वस्तुगत अथवा विकारगत भेद होते हैं। साहित्यमें, श्रद्धामें, ज्ञानमें, दृष्टिमें, बलमें, सौन्दर्यमें, सुखमें तथा मनुष्योंमें, प्रजामें, देश-काल आदि सबमें ये तीन प्रकारके भेद होते हैं और इनके द्वारा माप करनेसे सही माप हो सकता है तथा अटकल, अनुमान या आशा की जा सकती है।

पुरुषार्थ-दर्शन

अब पुरुषार्थ-दर्शनकी हमारी व्यवस्था देखिये। जीवनमें चार पुरुषार्थ या चार प्राप्तव्य माने गये हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इसमें धर्मका अर्थ है वह कर्तव्य जो स्वभावसे नियत हो तथा अपनी स्थितिमें धारण करके रखता हो। उसके द्वारा मनुष्य अपने जीवनकी योग्य संसिद्धिको प्राप्त करता है। दूसरा पुरुषार्थ है 'अर्थ' यानी जीवनकी आवश्यकताएँ; जिसके द्वारा जीवन-व्यवहार चलता है (धातु ऋ=गति करना) इसमें मनुष्यकी वृत्ति यानी रोजगार-धंधा या व्यवहारकार्य और समाज या राज्यके लिये राजनीति भी आ जाती है। व्यक्ति और समष्टि दोनोंके लिये यह आवश्यक माना जाता है। तीसरा पुरुषार्थ काम है, अर्थात् कामना, इच्छा। इसके तीन प्रकार बतलाये गये हैं—दारैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा—यानी स्त्रीकी इच्छा, धनकी इच्छा और लोक-लोकान्तरमें प्रतिष्ठाकी इच्छा। इस विचार-धारामें यह भी समझ लेना चाहिये कि धर्ममें सत्त्वकी, अर्थमें रजोगुणकी और काममें तमोगुणकी प्रधानताका आना सम्भव है। धन या देशकी कामनासे मनुष्य अनेक प्रकारके दुराचारोंमें और प्रजा अनेक प्रकारके विग्रहोंमें फँस जाती है। सत्त्वादि गुणोंसे परे जानेकी, केवल परमात्मतत्त्वमें लीन हो जानेकी स्थिति सबसे उच्चतम और आनन्दमय तथा अभयप्रद है, उसको प्राप्त करना चौथा अथवा अन्तिम या परमोत्कृष्ट पुरुषार्थ है। उसका साधन चित्तशुद्धि, एकाग्रता और निदिध्यासन या निरन्तर ब्रह्मचिन्तन है। इन चारों पुरुषार्थोंमें 'धर्म' प्रथम पुरुषार्थ है और 'मोक्ष' परम पुरुषार्थ है। बीचके दो पुरुषार्थोंकी व्यवस्था यह है कि 'अर्थ' ऐसा होना चाहिये जो धर्मसे अविरुद्ध हो और 'काम' ऐसा होना चाहिये जो मोक्षसे अविरुद्ध हो। इस प्रकार पुरुषार्थकी बड़ी व्यवस्था है और यह किसी भी दूसरे समाजमें देखनेमें नहीं आती। अरिष्टाटल आदिने सबके लिये एक पुरुषार्थ—उत्कृष्ट प्राप्तव्य क्या है? यह खोजनेका प्रयत्न किया है। परंतु वह पीछे रह गये हैं। आधुनिक विचारकोंने धन, काम, बल, राज्यसत्ता इत्यादिमें प्राप्तव्य स्थापन करनेका प्रयत्न किया है। परंतु वह सार्वजनिक या संतोषजनक नहीं हुआ है। इसका एक कारण यह है जैसा कि हमने पहले कहा है कि मनुष्योंमें तीन या चार प्रकृतियाँ होती हैं—उसके अनुसार—अर्थात् सात्त्विक, राजस और तामस तथा निर्गुण प्रकृतिके अनुसार—उनको क्रमशः धर्म, अर्थ, काम

और मोक्ष प्रिय अथवा पर्याप्त लगता है तथा इसी कारणसे श्रद्धा, बुद्धि, ज्ञान, कर्ता, करण, कर्म, आहार, विहार, व्यवहार सबमें सात्त्विक, राजसी और तामसी विवेक श्रीमद्भगवद्गीतामें वर्णित है।

समाजविभाग

पुनः इन तीन गुणोंकी विभिन्नताके कारण समाजके भी स्वभावसिद्ध चार वर्ण हो गये हैं। सत्त्वप्रधान ब्राह्मण, सत्त्वरजःप्रधान क्षत्रिय, रजस्तमःप्रधान वैश्य और तमःप्रधान शूद्र। जैसे वैद्यकविद्याविशारद सभी रोगियोंको एक ही दवा नहीं देता तथा सबको सब ओषधियाँ मिश्रित करके उनमेंसे एक-एक चुटकी नहीं बाँटता, बल्कि उनके गुण, दोष, व्याधि, प्रकृतिके अनुसार—अधिकारके अनुसार देता है। इसी प्रकार सनातन वैज्ञानिक वैदिक धर्ममें समाजकी भी स्वभावानुसार अधिकार-भेदसे यह वर्ण-विभागकी व्यवस्था की गयी है। पाठशालामें, सेनामें, नौकरीमें, राज्यमें, मिल और कारखानोंमें, जहाँ देखो वहाँ सर्वत्र विभागकी व्यवस्था देखनेमें आती है और जहाँ यथार्थ विभागका विचार नहीं होता, वहाँ उसे खिचड़ी, कूड़ा तथा सांकर्य नाम दिया जाता है। समाजकी योग्य व्यवस्थासे उसके आदर्श विशुद्ध रहते हैं, उसकी अभिवृद्धि निरन्तर नियतरूपसे होती रहती है, उसमें मनुष्य, प्रत्येक विभागके विशिष्ट गुणोंकी शिक्षा प्राप्त कर अपने-अपने विभागमें सर्वोत्कृष्ट बनकर समाजका नेतृत्व प्राप्त कर सकता है और समय-समयपर नाहक होनेवाले बलवे—विद्रोह और विग्रहसे रहित होकर समाज शान्तिसे जीवन बिताता है। इस प्रकारके समाजमें ही सैकड़ों राजा प्रजाके नामपर एक समय अपना राज्य छोड़ देते हैं, लाखों लोग अपनी लाखों एकड़ भूमि प्रजाके नामपर भूदानमें दे देते हैं और लाखों मनुष्य आजकी दुनियाके नास्तिक और स्वार्थी वातावरणमें भी धार्मिक जीवन और दैवी जीवनको ध्येय बनाकर उसका अनुसरण कर रहे हैं। ऐसी संस्कारिता और कर्तव्यपरायणता दुनियाकी किसी भी वर्णहीन प्रजाने या देशके इतिहासने अबतक बतलायी या दिखलायी नहीं है। ब्राह्मणादि चातुर्वर्ण्य व्यवस्थासे धार्मिक न लड़नेवाला बड़ा वर्ग शान्तिप्रिय रहता है। क्षत्रियोंका लड़नेवाला वर्ग समाजकी रक्षा करता है और वह कहीं उच्छृङ्खल नहीं हो जाता। वैश्योंका केवल एक ही वर्ग धनप्राप्तिके पीछे लगा रहता है और इससे सारे समाजमें धार्मिकता प्रधान प्रेरणाके रूपमें व्याप्त हो जाती है। लड़नेवाला वर्ग और धन उत्पादन करनेवाला वर्ग दोनों ही संयमित, निगृहीत और परोपकारी रहते हैं तथा समाज स्वार्थियों, उपद्रवियों, क्रान्तिकारियों या दुष्ट लोगोंकी नेतागिरीसे तथा उनकी बेड़ियोंसे बचा रहता है। जब बस्ती बढ़ जाती है या विकृत हो जाती है, तब इस जन्म, गुण, कर्म और वृत्तिका अवलम्बन करनेवाले वर्णविभागमेंसे उपजातियोंके उपविभाग निकल पड़ते हैं, जिनमें रजवीर्यकी शुद्धिके नियमका अनुसरण करके अनुकूलता बनी रहे, इसलिये ज्ञात—जाने हुए मनुष्योंका समूह ज्ञाति या जातिके रूपमें फैलता है। वनस्पतिमें तथा स्वेदज, अण्डज, जरायुज आदि प्राणियोंमें एवं मनुष्योंमें ये विभाग जन्मभूमि या बीजसे निर्णीत होते हैं, इसलिये इनमें स्वाभाविकता तथा निश्चितता होनेसे अदला-बदली करने या मार-पीट करनेकी आवश्यकता या इच्छा नहीं रहती। प्रजाके उद्योग-धंधोंका नियोजन, नियमन और संरक्षण इससे बहुत अच्छी तरह होता है एवं अनेक आर्थिक हानियोंसे प्रजा बच जाती है। इन सबमें स्वच्छन्दताको ध्येय मान लेनेसे इतनी अधिक अव्यवस्था बढ़ जाती है कि प्रजाको उसके परिणामस्वरूप आर्थिक डिक्टेटरशिपका परिणाम भोगना पड़ता है और 'लेने गयी पूत और खो आयी खसम' की कहावतके अनुसार बेचारी प्रजाको बड़ी हानि उठानी पड़ती है। जातियोंने अतिशक्तिशाली संस्कृतिप्रधान, और सदा जाग्रत् जनसमुदाय प्रकट किये हैं, यह सुविदित ही है।

दृष्ट सृष्टिके पाँच मुख्य तत्त्व

सृष्टिके पाँच मुख्य तत्त्व हैं, जिनको पाँच महाभूत कहते हैं—भूतका अर्थ है उत्पन्न हुआ। यानी ये अनादि या सनातन नहीं हैं, उत्पन्न हुए हैं और इस कारण इनका नाश भी होता है। ये पाँच महाभूत हैं—पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश। इनमें एक दूसरेसे अधिक सूक्ष्म हैं। सबसे सूक्ष्म 'आकाश' है, इसका गुण 'शब्द' है। इसमेंसे विकार होनेपर 'वायु' हुआ, जिसका गुण, स्वभाव या लक्षण 'स्पर्श' है। शब्द आकाशका गुण है, वायुका नहीं, यह प्रतिदिन स्पष्ट होता जाता है। वायुको केवल स्पर्शसे जान सकते हैं, तथापि इसके पिता आकाशका गुण शब्द इसमें व्यापक है। इसी प्रकार वायुसे 'तेज' उत्पन्न हुआ, उसका गुण 'रूप' है। इसकी विशेष प्रतीति हमको सिनेमाका फिल्म देखते समय होती है कि जिसमें केवल तेजकी विविध

प्रकारकी दीप्तिसे सारा चित्र प्रसरित होता है। यह तैजस अथवा अग्नि काष्ठमें भी रहती है, इससे यह भी ज्ञात होता है कि उष्णताको अग्निका गुण समझना ठीक नहीं है। इसके बाद तेजसे 'जल' उत्पन्न हुआ, जिसका गुण 'रस' है। जलको 'अमृत' भी कहते हैं, यह प्रकट ही है। रस, स्नेह, पानी इत्यादि शब्दोंकी मीमांसा रसिकोंने बहुत की है, इसलिये यहाँ विस्तार करनेकी जरूरत नहीं है। इसके बाद जलसे 'पृथ्वी' या भूतत्त्व उत्पन्न हुआ, जिसका गुण 'गन्ध' है। हमारी इस स्थूल पृथ्वीका 'गन्ध' गुण भी हमको वर्षा ऋतुमें, जब प्रथम जल-वृष्टि होती है अथवा जब नये मिट्टीके पात्रमें पहले-पहल जल भरा जाता है, तब भलीभाँति प्रत्यक्ष होता है। यह तो बहुत स्थूल गन्ध है। गन्धकी इन्द्रिय कुछ पशुओंमें अति तीव्र होती है, यह हम देखते ही हैं। इस प्रकार गन्ध आदि पाँच गुणोंवाले पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूत हैं। यह विवेक इतना मौलिक समझा जाता है कि सभी शास्त्रीय ग्रन्थोंमें इसकी भलीभाँति विवेचना की गयी है। इन पञ्चभूतोंके पञ्चीकृत तथा अपञ्चीकृत स्थूल, सूक्ष्म तथा अतिसूक्ष्म, अनेक स्वरूप हैं, जिनकी विस्तारपूर्वक आलोचना यहाँ नहीं करनी है। यह भूत-विभाग स्वाभाविक और स्पष्ट तथा वैज्ञानिक है। इसमें कार्यरूप महाभूतका कारणरूप महाभूतमें लय होता है और कारणके समस्त गुण कार्यरूप महाभूतमें आते हैं; ऐसा प्रकृतिसिद्ध नियम है। आधुनिक विज्ञान तो तत्त्वोंके निर्णयमें अभी चक्कर ही मार रहा है!

जीवका पञ्चकोषात्मक देह

आत्मा सर्वव्यापक, अविनाशी, अखण्ड, सनातन, परम सत्यरूप तत्त्व है। इसके ऊपर जैसे-जैसे उपाधिके स्तर चढ़ते हैं वैसे-ही-वैसे यह जीवभावको अधिकाधिक प्राप्त होता है। इन पाँच एकके ऊपर एक आनेवाले स्तरोंका विवेक नीचे लिखे अनुसार किया गया है। इन पाँच कोशोंके नाम हैं—स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, लिङ्ग देह, कारण देह और महाकारण देह। अथवा अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोश, ये नाम भी उनको दिये गये हैं। इन सबका तत्त्व समझने और समझानेमें दो खास पहेलियों—समस्याओंको ध्यानमें रखना आवश्यक है। पहली बात यह है कि यह विश्व और इस विश्वके पदार्थ, कीट और अणुसे लेकर अनन्त ग्रह और तारोंतक, जिसे हम न्यूनाधिक ज्ञानसे प्रमेय मान लेते हैं, वस्तुतः अप्रमेय हैं। मनुष्य समझता है कि वह पदार्थोंको अपनी बुद्धिकी मुट्ठीमें ले सकता है, परंतु जैसे-जैसे वह अधिक समझता जाता है, वैसे-वैसे ही अज्ञेयताका प्रदेश विशाल बनता जाता है। पदार्थ, उसके गुण और उसका इतिहास सबमें यह जगत् एक महान् जादूगरके खेल-जैसा अप्रमेय है। वह सदसत् अथवा अनिर्वचनीय है, क्षण-परिणामी है, मानवकी परिमित दृष्टिसे अनादि और अनन्त है एवं इसके कायदे-कानून भी उतने ही अप्रमेय हैं। चमकते हुए स्वर्णके शब्दमय पात्रसे हम सत्यको ढकनेका प्रयत्नमात्र करते हैं। जैसे, इस प्रकारके मौलिक प्रश्नोंको देखिये—'बीज पहले हुआ या वृक्ष पहले हुआ?' 'अपने-आपको जान सकता है या दूसरेको ही जान सकता है? या कोई-कोई दूसरेको जान ही नहीं सकता?' 'किसी भी पदार्थकी व्याख्या या शब्दका अर्थ दूसरी व्याख्या या दूसरे शब्दार्थकी सहायताके बिना ठीक-ठीक बन सकता है क्या?' 'सर्वज्ञता बिना कोई व्याप्ति (Major Premise) हो सकती है क्या?' विश्वकी इस अप्रमेयताके कारण मनुष्यको अपने प्रत्यक्ष या अनुमानके सारे निर्णयोंको वेद-जैसे ईश्वरोदित ज्ञानकी कसौटीपर कस लेना चाहिये।

दूसरी बात ध्यानमें रखनेकी यह है कि यह अपना शरीर विश्वरूप महाकायकी नन्हीं आवृत्ति है। 'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'—यह इसका संक्षिप्त सिद्धान्त-सूत्र है। इस पिण्डसे जैसे इसका आत्मा पृथक् है, तथापि वह इसमें व्यापक है। उसी प्रकार विश्वमें भी उसका विश्वात्मा उससे पृथक् होते हुए भी उसमें व्यापक है। जैसे शरीर दृश्य है और आत्मा अदृश्य है, उसी प्रकार विश्व दृश्य है और विश्वात्मा अदृश्य है। जिस प्रकार इस देहकी उत्पत्ति, स्थिति और लय होता है, उसी प्रकार ब्रह्माण्डकी भी उत्पत्ति, स्थिति और लय होता है। जैसे पञ्चमहाभूतोंसे यह देह बना है, वैसे ही विश्व भी पञ्चमहाभूतोंसे बना है। जैसे इस पिण्डके नाडी, प्राण और स्वास्थ्यके नियम हैं, उसी प्रकार इस ब्रह्माण्डके भी हैं। जैसे यह देह और जीव किसी-न-किसी क्रियामें व्यापृत रहते हैं, उसी प्रकार यह विश्व और विराट् भी अपनी क्रियामें सदा व्यापृत रहते हैं। जैसे यह देह त्रिगुणान्वित है, उसी प्रकार यह विश्व भी त्रिगुणान्वित है। जैसे जीवकी जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय—ये चार अवस्थाएँ हैं, उसी प्रकार विश्व विराट्की भी हैं। जैसे जीव अपनी मायासे अपने सारे जगत्को खड़ा कर देता है, उसी प्रकार दिव्यका विराट् भगवान् भी स्वेच्छासे अपनी मायाके द्वारा इस अनन्त ब्रह्माण्डको इन्द्रजालके समान खड़ा कर देता है।

भेद केवल इतना ही है कि जीवकी नन्हीं उपाधिके कारण उसके ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और विरति परिमित या अल्प होते हैं और विराट्के असीम होते हैं। अब इस देहके तत्त्वोंको देखिये। इस देहके अन्नमय कोषके मुख्य तत्त्व महत्तत्त्व, पञ्च महाभूत, पाँच ज्ञानेन्द्रिय तथा पाँच कर्मेन्द्रियाँ गिनी जाती हैं। प्राणमय कोषके तत्त्व पञ्च प्राण अथवा दस प्राण गिने जाते हैं। मनोमय कोषका मुख्य तत्त्व मन, विज्ञानमय कोषका मुख्य तत्त्व बुद्धि तथा आनन्दमय कोषका अधिष्ठान स्वयं आत्मा है।

विचार-विवेकके तीन काण्ड

पशुसे मनुष्यमें विशेषता है उसके विवेक-विचार करनेकी शक्तिको लेकर। अब यह देखना है कि विवेक-विचारके विषय कौन-से हैं। वे विषय शास्त्रीय तथा वैज्ञानिक दृष्टिसे तीन हैं, ऐसा कहा जा सकता है—(१) अपना कर्तव्य क्या है? (२) अपना उपासितव्य क्या है? (३) और अपना ज्ञातव्य क्या है? अर्थात् सत्य क्या है, प्राप्तव्य क्या है और कार्य क्या है? इन तीनोंके लिये कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्डमें विचार किया गया है। इन तीनों काण्डोंमें समझनेकी बात यह है कि इनकी व्यवस्था कर्ता, काल, देश, क्रिया, करण आदिके साथ सापेक्षता रखती है। इस प्रकार इन सबमें तामसकी अपेक्षा राजस, राजसकी अपेक्षा सत्त्व और सत्त्वमें भी अधिक शुद्ध सत्त्व गुणवाले पदार्थोंमें निष्ठा जितनी बढ़े उतनी ही अच्छी है। जैसे मदिरापान, परस्त्रीगमन इत्यादि तमोगुणी क्रियाएँ हैं; परिश्रम करके कमाना, भोगोंको भोगना आदि रजोगुणी क्रियाएँ हैं; और प्रभुका भजन करना, दान देना, पवित्रता रखना, व्रतादि करना—ये सात्त्विकी क्रियाएँ हैं। धर्म सर्वदा मनुष्यको कर्ममें सात्त्विकताकी ओर ले जाता है। उपासनामें भी तमोगुणवाले भूत-प्रेतादि अथवा पञ्चमहाभूतोंकी उपासना करते हैं। रजोगुणवाले विविध देवताओंकी उपासना करते हैं और सत्त्वगुणवाले एक अखण्ड चिद्घन परमात्माकी उपासना करते हैं। ज्ञानकाण्डमें भी सर्वव्यापक परम-तत्त्व, जो परमात्मा है, उसका ज्ञान सात्त्विक ज्ञान है। विविध पदार्थोंके वैविध्यकी भिन्नताका जो ज्ञान है, वह राजस ज्ञान है और उचित विचार बिना किये, किसी कार्यके लिये माना हुआ जो अयथार्थ क्षुद्र ज्ञान है, वह तामस ज्ञान कहलाता है। तामस ज्ञान बहुधा भ्रमात्मक ज्ञान होता है। राजस ज्ञान एकदेशी, सापेक्ष और परिवर्तनशील होता है। इसलिये सात्त्विक ज्ञान नित्य अथवा सनातन है, राजसी ज्ञान तात्कालिक या कामचलाऊ है और तामसी ज्ञान विपरीत अर्थात् रज्जुमें कल्पित सर्पके समान है।

उपासनाके प्रकार

उपासनाका अर्थ पास बैठना या पास जाना अथवा प्राप्त करना है। उपासना यानी भक्ति—किसी भी तत्त्वकी। इसके भी तीन प्रकार हैं—सात्त्विक, राजसी और तामसी। उपास्य, उपासक और उपासनाकी क्रिया, इन तीनोंमें ये प्रकार हो सकते हैं। उपास्य, उपासक और उपासना—इन तीनोंका ऐक्य ही उपासनाकी पराकाष्ठा है। किंतु कर्म, उपासना और ज्ञानमें एक दूसरा प्रकार भी माना जाता है। जो शुद्ध सात्त्विक हो उसको निर्गुण भी कहा जाता है, परंतु केवल सात्त्विकरूपमें वह सात्त्विक गिना जाता है। एक परमात्म-तत्त्वकी निर्गुणरूपमें अथवा उसके लिङ्गादि आयतनके रूपमें अथवा श्रीराम-कृष्णादि स्वरूपमें उपासना करना सात्त्विक उपासना है। उसकी देवादि, ब्राह्मणादि, कुमारिका, गौ, तुलसी, भूमि आदि विभूतियोंके रूपमें उपासना करना राजसी उपासना है तथा भूत-प्रेत, पञ्च महाभूतोंके तामसी रूप, दुष्टजन आदिके द्वारा उपासना करना तामसी उपासना कहलाती है। वस्तुतः ऐसा भी कहा जा सकता है कि समस्त जगत् परम तत्त्वकी ही उपासना महाविभूतियोंके द्वारा, सद्विभूतियोंके द्वारा अथवा दुर्विभूतियों-के द्वारा यानी उत्तम, मध्यम और निकृष्ट विभूतियोंके द्वारा कर रहा है; क्योंकि तत्त्वतः इसके बिना दूसरा है ही कहाँ, जिसका यह सहारा ले सके? और इसी कारण सब अपनी-अपनी तानमें गलतान रहते हैं और ज्ञानी-पण्डित इसको अपनी श्रद्धासे निकाल देनेके लिये यत्नशील नहीं होते, केवल इनमें परमात्म-बुद्धि करवा देते हैं। वस्तुतः जैसी उपासना होती है, वैसी ही उसके फलकी प्रतिक्रिया कर्ताके ऊपर दिखलायी देती है—होती है और वह भेद व्यक्तिको—कर्ताको अपना प्रभाव दिखलाता है। इसलिये शुभ फलकी इच्छा रखनेवाले सात्त्विकताको कर्म, उपासना और ज्ञानमें साधते हैं और इसी कारण ज्ञानीकी अवधूतावस्थामें इन सबके फलकी भी अपेक्षा नहीं होती है और इन सारे विधि-निषेधके निर्बन्ध भी छूट जाते हैं। पण्डितोंकी समदृष्टिका यह रहस्य समझनेके साथ ही अधिकार-भेदकी व्यवस्था सहज ही समझमें आ जाती है। ज्ञानी इस जगत्की क्रीड़ाको परमात्माकी मायाके रूपमें, ईश्वरकी लीलाके रूपमें, सत्त्वादि गुणोंकी उठती हुई तरङ्गोंके महासागरके रूपमें देखता है।

(शेष आगे)

अघ-अर्दन

(लेखक—श्रीसुदर्शनसिंहजी)

एवं विमृश्य सुधियो भगवत्यनन्ते
सर्वात्मना विदधते खलु भावयोगम् ।
ते मे न दण्डमर्हन्त्यथ यद्यमीषां
स्यात्पातकं तदपि हन्त्युरुगायवादः ॥
(श्रीमद्भा० ६ । ३ । २६)

अघ-पापके मुखमें अनन्तकालसे प्राणी स्वतः प्रविष्ट हो रहे हैं। वे प्रविष्ट होते हैं क्रीड़ाके लिये—सुखबुद्धिसे । पच जाते हैं वहाँ । नष्ट हो जाते हैं ।

असुर अघने कितनोंको भ्रान्त किया, कितनोंको पचाया, कोई गणना नहीं ।

श्रीकृष्णके सखा—उनके जन भी उसके मुखमें पहुँच गये । नवीन बात थी उस दिन—उन्होंने श्यामसुन्दरसे पूछा नहीं, उसे साथ नहीं लिया, बुलाया भी नहीं—उससे पृथक् आमोद-क्रीड़ा करने चले !

'कुपथं तद् विजानीयाद् गोविन्दरहितागमम् ।'

गोविन्दसे रहित हुए और अघके उदरमें गये । 'अमृषा मृषायते ।' जो असत्य है, उसे सत्य, और जो सत्य है, उसे असत्य—अघकी—अघरूप इस संसारकी यही तो माया है । इसके परम दुःखद, महाभीषण रूपको रोचक, सुखद मानकर ही तो सब इसके दुर्गन्धपूरित मुख-विवरमें प्रविष्ट होते हैं । प्रविष्ट हुए वे बालक भी; पर वे उन अनन्त जीवोंमेंसे नहीं थे जिन्हें अघने पचा लिया था । श्रीकृष्णके जन थे वे—संदेह हुआ, आशङ्का थी; पर 'कन्हैया जो है !'

'तथा चेद् बकवद् विनङ्क्ष्यति' इसने नष्ट करना ही चाहा तो श्याम इसे बककी भाँति मार डालेगा !' यह विश्वास था वहाँ । गये भी थे वे अपने सखाका मुख देखते हुए ही ।

अघने मारा नहीं उन्हें—वह श्रीकृष्णकी प्रतीक्षा कर रहा था । श्रीकृष्ण—उनकी विस्मृतिके बिना उनके जनोंको अघ पचा सकता ही नहीं ।

श्याम—जहाँ उसके सखा—उसके जन, वहाँ वह । उसे छोड़कर उसके सखा अघके उदरमें चले गये—क्रीड़ा-बुद्धिने उन्हें उससे दूर अघके अन्तरमें पहुँचा दिया—तब उसे भी वहीं होना ही चाहिये । सखाओंने नहीं बुलाया तो वह स्वयं जायगा ।

श्रीकृष्णके सखा-जन भी क्रीड़ा-बुद्धिसे अघके अन्तरमें जाते तो हैं—जाते हैं तब श्यामसे दूर होकर ही जाते हैं, भ्रान्तिवश ही जाते हैं । पर अपने नित्य सखाकी ओर देखते हुए जाते हैं ।

वहाँ—अघके अन्तरमें पहुँचकर—वहाँ तो मूर्च्छित होना ही है । वहाँ स्मृति—चेतना रह नहीं जाती । मुग्ध हो जाते हैं ।

श्याम जो सजग रहता है उनके लिये । वह स्वयं वहाँ आता है । अघके मुखमें ही वे श्रीकृष्णका सांनिध्य पाते हैं ! उन्होंने पुकारा नहीं—मूर्छित थे वे तो ! श्रीकृष्ण आये थे—वे ही आते हैं ।

'अघोऽपि यत्स्पर्शनधौतपातकः' यह क्या अघ रह जायगा जहाँ श्यामसुन्दर पहुँच जाय ! वह अघ—सायुज्य प्राप्त हो गया उसे !

सखाओंने प्रायश्चित्त किया ? शुद्ध हुए ?

किस लिये ? वे जहाँ गये, वह अघ तो अघ रहा ही नहीं । औरोंके लिये ही अघ था वह । जिनके लिये अघ था, उन्हें पचा जाता था । वे प्रायश्चित्त करते निकल नहीं पाते थे । जिन्हें वह पचा न सका—उनके लिये सदाको वह क्रीड़ागह्वर हो गया ।

श्रीकृष्णके सखाओंने जिसे क्रीड़ागह्वर समझा—उसे तो उनका क्रीड़ागह्वर ही बनना होगा ! वह अघ है—रहे, जो विनोद श्रीश्यामसुन्दरके सखा चाहते हैं, वह तो उसे देना होगा ! वह भी उसी रूपमें । वह अघ नहीं—क्रीड़ागह्वर, विनोदमात्र रहेगा । उसका विष—उसकी पतनकारिणी शक्ति नष्ट होगी; क्योंकि कन्हैयाके जन सुखबुद्धिसे जब उसमें आये तो कन्हैया भी तो आयेगा वहाँ !

नित्य ही वह नटनागर अपने सुहृदोंके लिये अघ—पाप-को प्राणहीन क्रीड़ागह्वर बनाया करता है !

अघ—जो उस बकारिका मुख देखते नहीं प्रविष्ट होते, उन्हींको पचा पाता है ।

बक—पाखण्डको जिसने चीर फेंका, उसके सखाओंको उसी बकका छोटा भाई अघ पचा लेगा ? आकर्षित करना-मात्र उसके वशमें है और तब वह मरता ही है ।

बहुत पहले—द्वापरमें ही अपने सखाओंके लिये श्यामने अघको मार डाला। अमूर्त—आध्यात्मिक जगत्‌में नहीं—मूर्त जगत्‌में! श्रीवृन्दावनधाममें!

× × × ×

आज श्यामसुन्दर अरुणोदयसे पूर्व ही जग गया। सायङ्काल ही उसनें मैयाको बार-बार सावधान किया था कि कल बड़े प्रातः बछड़ोंको ले जाना है। उसके छीकेमें खूब-सा मक्खन, बड़ी मोटी रोटी, मिश्री—सब अभी रात्रिमें ही रख दी जाय। कई बार उसने मैयाको स्मरण कराया, कई बार पूछा कि छीका ठीक हो गया या नहीं। कभी सब वस्तुएँ जो छीकेमें रखनी होतीं, गिना देता और थोड़ी देरमें स्मरण करके कहता—'मैया! उसमें नमक भी रखना, मूली भी।' पता नहीं क्या-क्या बताया। बड़ी कठिनतासे मैया मना सकी उसे कि रोटी और मक्खन वह रात्रिके पिछले प्रहरमें बनाकर ताजे रख देगी। अभी रखनेसे वे बासी हो जायँगे। 'भूल जाय तू तो? देर हो जायगी!' माताको बहुत हँसी आती थी, फिर भी उसने विश्वास दिला दिया कि वह भूलेगी नहीं।

अबतक बछड़े पास ही चरते थे व्रजके। बालक कलेऊ करके जाया करते थे घरोंसे और मध्याह्नका भोजन वे घरपर आकर कर जाते थे। कल सबने परस्पर निश्चय किया कि अगले दिन थोड़ी दूर श्रीयमुनाजीके तटपर जहाँ खूब पुष्प खिले हैं, बछड़ोंको ले जायँगे। वनमें ही मध्याह्नके लिये भोजन-सामग्री लायेंगे। संध्याको घरोंको लौटेंगे। सबने अपने घरोंपर जाकर माताओंसे यह बता दिया।

बाबाने सरलतासे तो आज्ञा दे दी, पर मैया मानती नहीं थी। श्यामसुन्दर दिनभर वनमें रहेगा! यह बड़ी दुःखद एवं आशङ्कापूर्ण कल्पना है। 'कल तो दाऊ भी साथ नहीं रहेगा! उसके करोंसे गोदान कराना है ब्राह्मणोंको। उसका जन्मनक्षत्र है कल।' परंतु कन्हैया तो हठी है। वह सखाओंके साथ वन-भोजनका निश्चय कर आया है। अपनी बात छोड़ना जानता नहीं। उसके मनको दुःख भी नहीं होना चाहिये। समझानेका प्रयत्न सफल होते न देखकर मैयाने किसी प्रकार स्वीकृति दे दी है।

'मेरा छीका भर गया क्या?' सम्भवतः उल्लासमें श्रीकृष्ण सोया ही नहीं। आशङ्काके लिये कोई कारण नहीं था। मैया स्वयं अनेक पक्वान्न बनानेमें लगी थी। जब भी कन्हैयाने पूछा, उसे उत्तर मिला—'तू तनिक नींद तो ले ले! अभी तो बहुत रात्रि है!' इतनेपर भी वह अँधेरा रहते ही उठ बैठा। और दिनों मुख धोने, कलेऊ करने, सबके लिये मैयाको आग्रह करना पड़ता था; परंतु आज तो बात ही दूसरी है। आज शीघ्रता श्यामको है। 'मेरा पटुका! मेरा लकुट कौन ले गया! दाऊ भैया पता नहीं कहाँ रख आता है रोज ऐसे!' कलेऊ भी थोड़ा ही किया उसने।

'भद्रको आने दे, बाबाके पाससे; छीका वह ले जायगा!' माताने छीकेमें अनेक पदार्थ सजाये हैं। वह बहुत भारी है; परंतु कन्हैया मानता कहाँ है। उसने बायें कंधेपर लटका लिया उसे। कटिकी कछनीमें मुरली लगायी, दाहिने हाथमें वेत्र—लकुट लिया और बायेंमें शृङ्ग।

'बहुत दूर मत जाना! सखाओंके साथ ही रहना! बछड़े भाग भी जायँ तो उनके पीछे दौड़नेकी आवश्यकता नहीं, वे घर चले आयेंगे! यमुनाजीमें स्नान करने या जल पीने मत जाना!' मैया पता नहीं कितनी चेतावनी देती, परंतु श्याम तो हँसता हुआ द्वारसे बाहर हो गया।

'धूतू, धूतू, धू, धू,' गोपबालक चौंककर अपने-अपने छींके उठाने लगे। 'यह तो कन्हैयाका शृङ्गनाद है!' नित्य तो सब अपने घरोंसे बाबाके द्वारपर प्रस्तुत होकर आ जाते हैं, तब कहीं आप सोकर उठते हैं, धीरे-धीरे मैयाकी मनुहारसे मुख-हाथ धोकर कलेऊ करते हैं। मैया सखाओंको भी विवश करती है दुबारा श्यामके सङ्ग कलेऊ करनेके लिये। इस प्रकार घड़ी-दो-घड़ीमें तो निकल पाते हैं और आज......आज सबको स्वयं बुलाने लगे हैं, इतना शीघ्र! भद्र चुपके दाऊके पास माता रोहिणीके समीप आ गया था—वह आज दाऊका छीका ले जायगा।

उत्सुकता सबको है। सभी कुछ शीघ्र उठे हैं। सबके छीके विविध व्यञ्जनोंसे भरे हैं। व्रजमें रात्रिभर घर-घर कड़ाहियाँ छनन-मनन करती रही हैं। माताओंने बालकोंको कलेऊ करा दिया है। मुक्ता एवं गुञ्जाकी माला, स्वर्णाभरण, मणिजटित कुण्डल, केयूर, दर्पणजटित अङ्गद प्रभृति आभूषणोंसे सब भूषित किये गये हैं। सब प्रथम निकलनेके प्रयत्नमें थे—परंतु आज बाजी कन्हैयाने मार ली। वह शृङ्ग बजाकर सबको बुला रहा है, इतने जोर-जोरसे शृङ्ग बजा रहा है, जैसे समझ लिया कि अभी सब सो रहे हैं, उन्हें जगाना है।

मयूरमुकुट मन्द-मन्द वायुमें हिल रहा है, दोनों कर्णोंके पद्मराग-कुण्डल कपोलोंमें प्रतिबिम्बित होकर झलमला रहे हैं, भाल गोरोचनकी पीताभ खौरसे ऐसा हो गया है जैसे नील जलदपर भास्करकी रश्मियाँ और भ्रुकुटियोंसे ऊपर सीधमें कुङ्कुमतिलकके मध्य मैयाने कस्तूरिकाका कृष्णविन्दु रख दिया है, भ्रमरशिशु परागपटलपर बिखरे दो पाटलदलोंके मध्य आ बैठा हो जैसे। नेत्र कुछ ऊर्ध्वोत्थित हैं और चञ्चलतासे इधर-उधर देख भी लेता है। अधरोंमें वही टेढ़ा शृङ्ग लगा है। वनमाला, मुक्तामाल, कङ्कण, अङ्गद आदि आभूषणोंकी चर्चा कौन करे। मैयाने आज अपने श्यामको खूब सजाया है।

सहस्रों उज्ज्वल, लाल, काले, पीताभ, कर्बुर, चित्र-विचित्र वर्णवाले चञ्चल, सुपुष्ट बछड़े सम्मुख चल रहे हैं। वे चञ्चल कूदते हैं, दौड़ते हैं और फिर पीछे मुख करके अपने अलौकिक चरवाहेकी ओर देखने लगते हैं। उसे सूँघकर फिर कूदते हैं। गलियोंसे, गृहोंसे बछड़ोंके यूथ-के-यूथ दौड़ते चले आ रहे हैं। यह मुख्य यूथ बढ़ता ही जा रहा है। बछड़ोंके समूहोंके पीछे उनके चरवाहे भी दौड़ते आते हैं। अन्ततः वे बछड़ोंके बराबर तो दौड़ नहीं सकते। बछड़े अपने दलमें और चारक अपने दलमें बढ़ रहे हैं। शृङ्ग बजता ही जा रहा है। प्रत्येक सखाके आते ही श्याम उसकी ओर देखता है। उसकी दृष्टिमें उल्लास है। वे नेत्र मानो कहते हों 'क्या करूँ, तुम नहीं आये तो मैंने बुलाया! अभी और तुमसे भी आलसी हैं, उन्हींको बुलानेके लिये बजा रहा हूँ इसे!'

'अच्छा, आज तनिक शीघ्र उठ गये तो यह रंग।' सखाओंके नेत्र उत्तर देते जा रहे हैं। वे हँसते हैं खुलकर। 'शृङ्गनाद बज रहा है! प्रबुद्ध कर रहा है! श्यामसुन्दर बुला रहा है! कितने आलसी हैं जो नहीं सुनते, नहीं जागते, नहीं दौड़ते, क्या करे वह!' परंतु व्रजमें कोई आलसी नहीं। अट्टालिकाएँ भर उठी हैं। मार्गके दोनों ओर पुरुष एवं वृद्धाएँ खड़ी हो गयी हैं। श्याम आज मध्याह्नमें नहीं लौटेगा। पूरे दिनभर उसके दर्शनोंसे नेत्र दूर रहेंगे। एक बार देख लेनेकी लालसा सबको खींच लायी है।

शृङ्ग बज रहा है, बछड़े उछल रहे हैं, गोपबालक दौड़ते आ रहे हैं। कंधोंपर छीके, हाथोंमें वेत्रदण्ड—स्नेहमय गोपबालक। मन्द गतिसे बछड़ोंको आगे करके कन्हैया चला जा रहा है राजपथसे। ऊपरसे पुष्प फेंके जा रहे हैं उस समूहपर—लाजा, अक्षत और दूर्वा भी। वृद्धाएँ आशीर्वाद दे रही हैं। विप्रवर्ग स्वस्तिवाचन कर रहे हैं। अधिकांश नेत्र बाष्परुद्ध किये अपलक हैं।

ऊपर—अट्टालिकाओंके ऊपर कूदता कपिदल साथ किलकता जा रहा है। पक्षियोंके लिये जैसे उड़नेको और कहीं स्थान ही न हो। उनके पक्षकी छायाने पूरे मार्गपर छत्र लगा रक्खा है और वन-सीमान्त अपने अनन्त नेत्रोंसे प्रतीक्षा कर रहा है इस अद्भुत अतिथिकी। पूरे वनके पशु सीमान्तपर आकर मुख उठाये ग्राम-मार्गकी ओर देख रहे हैं। मयूरोंने पंख फैलाकर नाचना प्रारम्भ कर दिया, बुलबुल फुदक-फुदककर संवाद सुना आया, मृगोंने दीर्घ दृगोंमें आलोक सजाया, मुखसे मृगराजने गूंज दी, कीर एवं कोकिल-के कण्ठोंसे स्वागत-गान निकला—वनश्रीका अधिष्ठाता वनमें प्रवेश कर रहा है।

× × ×

बछड़ोंकी गणना है कोई—कन्हैयाने अपने बछड़ोंका यूथ पृथक् किया—सबने अपने-अपने बछड़े पृथक् करने चाहे! भला, चञ्चल बछड़े क्या भेड़ हैं जो एकत्र होंगे; अन्ततः सबको एक कर देना ठीक जान पड़ा। बड़ा विशाल है यह वत्स-यूथ। चरना किसे है—बछड़ोंने तो भरपेट दूध पिया है माताओंका। गोपगण जानते हैं कि बछड़ोंको आवश्यकतासे कुछ अधिक दूध पिलानेसे वे कम कूदेंगे और वनमें बालकोंको कष्ट न देंगे। बछड़े परस्पर खेलते या चरवाहोंके साथ उछलते रहते हैं। कन्हैयासे दूर जाना उनके स्वभावमें नहीं है।

बालकोंने देखा लाल-लाल गोल-गोल त्रिपत्रिकाके फल, पीले सुचिक्कण कटेरीके फल, उज्ज्वल धारीदार मञ्जिकाफल बड़े सुन्दर लगते हैं। किसीने उन्हें अपने कङ्कणमें बाँधा और किसीने अङ्गदमें लटकाया। कन्हैयाके कुण्डलोंके पद्मरागमणि बिम्बाफलोंसे द्विगुण हो गये। एक दूसरेके कानोंपर आमके लाल-लाल किसलय उन्होंने रख दिये और लवङ्ग-लतिका, दन्तिका, माधवीके गुच्छोंसे सजाने लगे अपने आपको। अलकोंमें रंग-बिरंगे पुष्प ग्रथित हुए। कन्हैयाने मयूर-पिच्छ धारण किया है तो दूसरे शुक, नीलकण्ठ एवं हंसोंके पिच्छ धारण करके चित्र-विचित्र शोभासे सम्पन्न हो गये।

'मैं तेरी भुजापर कपोत बनाऊँगा !' एक छोटा-सा गोप-बालक दुग्धोज्ज्वल मृत्तिका ले आया और उसने श्रीकृष्णकी दक्षिण भुजा अपनी गोदमें रख ली।

'तेरे कपोतके चोंच और पद मैं रँग देता हूँ।' दूसरा गेरू लेकर वाम बाहुपर कुछ बनाते उसे छोड़कर दक्षिण बाहुके समीप आया'। 'तू मेरे खञ्जनपर थोड़ी उज्ज्वल रेखाएँ तो खींच दे !'

'कनूँ, देख मैंने कितना बड़ा बंदर बनाया !' दोनों मधुमङ्गलके हाथ पकड़ लिये हैं और एकने उसके पेटपर रामरजसे बड़ा-सा पीला कपि चित्रित कर दिया है। सब किसी-न-किसीकी पीठ, पेट, भुजा, वक्षपर अपनी कला प्रदर्शित कर देना चाहते हैं। श्यामसुन्दर तो पूरा चित्रमन्दिर बन गया इस उद्योगमें।

'मेरा छीका क्या हुआ ?' श्रीदामने देखा, किसीने उसे कहीं खिसका दिया है ! 'कन्हैया ! यह परिहास अच्छा नहीं, तू छीका दे दे, भला !' यही नटखट सदा उसके पीछे पड़ा रहता है।

'मैं यहाँ तो बैठा हूँ !' जैसे आपको कुछ पता नहीं।

'हूँ, तू अपना छीका उठा तो सही !' श्रीदामने बहुत ढूँढ़-ढाँढ़के पश्चात् देखा कि सुबलके कंधेपर उसका छीका बहुत मोटा दीखता है।

'पूरे ऊधमी हो तुम सब !' श्रीदाम इधर-से-उधर कहाँ-तक दौड़े। सुबलने पता लगते ही छीका दूसरेको दे दिया। उसके पीछे भागे तो उसने तीसरेको दिया। सब हँस रहे हैं ऊपरसे। अन्तमें झल्ला उठा वह।

'ले ! रो मत !' पास लाकर देनेका नाट्य करके भी सब दे नहीं रहे हैं। बड़ी कठिनतासे वह एकको पकड़ पाया। कदाचित् शान्ति देखकर देनेके लिये ही वह पकड़में आ गया। इस दौड़-धूपमें कइयोंके छीके, वेत्र, पटुके लुप्त हो गये। वही अन्वेषण, दौड़-धूप, उन्मुक्त हास्य।

'मैं छूऊँगा !' एक दौड़ा !

'छू चुका तू !' दूसरेकी गति उससे तीव्र है।

—और सब-के-सब दौड़ रहे हैं। कहाँ ? वह श्यामसुन्दर अपराजिताके गुच्छे देखने चला गया है न—बस, उसीके पास।

'कनूँ, देख ! मैं तेरे-जैसी वंशी बजा लेता हूँ न ?' एक सखाने मुरलिकाके छिद्रोंपर अँगुली रक्खी।

'रहने दे अपनी पें-पें !' दूसरेने शृङ्ग मुखसे लगाया और 'धूतू-धू' करके कानन गुञ्जित कर दिया।

एक छोटा गोपबालक भौंरोंके साथ 'गुन-गुन' कर रहा है। दूसरेने 'कुहू, कुहू' करके कोकिलको चिढ़ाना प्रारम्भ किया। पक्षी उड़ रहे हैं। बालक उनकी छायापर दौड़ते चले जाते हैं। एक हंसके साथ धीरे-धीरे चरणक्षेप करता चलनेका नाट्य कर रहा है और एक-दो बगुलोंके साथ एक पैरपर स्थिर बैठनेका अभिनय करनेमें लगे हैं।

'ताथेइ, ताथेइ, ता-ता थेइ, थेई' श्यामसुन्दर मयूरके साथ चारों ओर मुख घुमा-घुमाकर नाचनेमें लगा है। कुछ सखा ताल दे रहे हैं। एकने एक बंदरके बच्चेको पकड़ लिया है। एक-दो बालक बाल-कपियोंको पकड़नेके लिये उनके साथ पेड़ोंपर चढ़ रहे हैं। बंदरिया दाँत दिखला रही है और वे भी दाँत दिखाकर उसे चिढ़ा रहे हैं। बंदरोंके साथ कुछ कूदनेमें लगे हैं।

कुछ मेढकोंके साथ बैठकर कूद रहे हैं, कुछने स्नान करना प्रारम्भ कर दिया और कोई बड़े जोरसे हँस रहे हैं। गिरिराजसे उस हास्यकी प्रतिध्वनि आती है और वे फिर हँसते हैं। कुछने प्राप्त ध्वनिको पाजी, उजड्ड, नटखट, भीरु, ऊधमी बनाया। सब खेलनेमें लगे हैं। आनन्द-क्रीड़ा—निश्चल हास्य !

बछड़े, मयूर, मेंढक, हंस, कपि, भ्रमर, पुष्प, बगुले—यहाँतक कि जड पर्वततक उनके सहचर हो गये हैं। श्रीकृष्ण उनमें क्रीड़ा कर रहा है और सब सचराचर क्रीड़ामय है उनके लिये। उनकी क्रीड़ाके ही लिये सम्पूर्ण प्रकृति-सम्भार है।

× × ×

आज पहली बार कन्हैया वनभोजन करने आया है। पहली ही बार दाऊके बिना वह वनमें आया और पहली ही बार इतनी दूर आया। पहली बार कंसने देखा भी अपने उस महाकालको। वृन्दावनसे गोप-बालक दूर आ गये हैं कुछ। मथुरा-नरेश अपने पार्षदोंके साथ आखेट करने आये थे। बछड़ोंका शब्द, वेणुरव, शृङ्गनाद, बच्चोंकी किलकारियाँ और प्रतिध्वनिको पुकार-पुकारकर डाँटना उन्होंने सुना। हृदय काँप गया। इस प्रकार अकस्मात् श्रीकृष्णके सम्मुख होनेको वे प्रस्तुत नहीं थे; फिर इस खुले काननमें ? परंतु अपना भाव उन्होंने प्रकट नहीं होने दिया। बालकमण्डली गिरिराजके पादप्रान्तमें है, शिखरपर ऊँचाईसे अपनेको

तरु-लताओंके ओटमें करके कंसराज अपने दलके साथ इनकी क्रीड़ा देख रहे थे ।

'कैसे उछल-कूद रहे हैं ! एक श्वासमें ही सबको खींचकर निगल जाऊँ ।' अघासुरने धीरे-धीरे अपने-आप कहा । उसकी अङ्गार-सी दृष्टि नीचे लगी थी । यह क्रीड़ा उसे असह्य लग रही थी । दूसरोंका सुख यों ही कलुषित-प्रकृति लोगोंको असह्य होता है, फिर वह तो सर्प ठहरा ।

'यदि तुम ऐसा कर सको ! मैं बड़ा प्रसन्न होऊँगा ।' कंसने उस अजगरकी फुसफुसाहट सुन ली । 'जाओ, सबको उदरस्थ कर लो ! देखो, सावधान रहना, वह काला लड़का कहीं छिटककर भाग न जाय !' अघको आदेश मिला । वह सरकता हुआ पर्वतशिखरसे उतरा । घनी झाड़ियोंमेंसे खिसककर बालकोंकी दृष्टि बचाता उनके मार्गमें मुख फाड़कर शान्त पड़ रहा । जैसे उसमें प्राण ही न हों, निष्कम्प—निश्चल ।

'हे प्रभु !' आकाशमें विमानोंकी पंक्तियाँ लगी हैं । देवता श्यामसुन्दरकी मनोरम क्रीड़ा देखनेमें तन्मय हो रहे थे । सहसा दृष्टि उस अजगरपर गयी । एक पलमें सबने भयपूर्वक उस सर्पाकार महादैत्यको देखा । उनके विमान और ऊपर—ऊपर चले गये । 'इन बछड़ों और बच्चोंसे तो उसका उदर भरना है नहीं । कौन जाने ऊपर मुख करके श्वास खींच ले ! अमृत पीकर अमर होना क्या अर्थ रक्खेगा उसके उदरकी जठराग्निमें !'

'यह काला लड़का—इसीने मेरी बड़ी बहिन पूतनाको मारा और मेरे बड़े भाई बकको भी चीर डाला है !' अघासुर पड़ा-पड़ा सोच रहा था । 'मैं आज इसे और इसके सब साथियोंको निगल जाऊँगा । मेरे बन्धु जहाँ गये, वहीं इन सबको भी भेज दूँगा । इन लड़कोंके न रहनेपर व्रजवासी स्वयं मृतप्राय हो जायँगे । महाराजको उनके मारनेमें कोई प्रयास न होगा !'

असुर बछड़ों और बालकोंकी ओर एकटक देख रहा था । वे खेलते, कूदते, उछलते धीरे-धीरे उसीकी ओर बढ़े आ रहे हैं । पर्वतसे कंसका दल और नभसे देववर्ग उत्सुकता, आशङ्कासे वहीं दृष्टि लगाये हैं ।

'अरे, यह क्या है ? बड़ी अद्भुत गुहा है यह तो !' भद्रकी दृष्टि पड़ी अजगरपर । वही सबसे आगे है । उसने दूसरोंको पुकारकर बताया । कन्हैया पीछे है । वह कलापीके साथ नाचनेमें तन्मय हो रहा है । शेष सब बालक दौड़ आये । बछड़े आगे ही हैं । वे पता नहीं क्यों ठिठक गये हैं ।

'हम सब कभी इधर आये ही नहीं । वृन्दावनमें यह कितनी सुन्दर गुफा है !' समीप खड़े होकर वे ध्यानसे उसे देखने लगे हैं ।

'ठीक ऐसी है, जैसे किसी अजगरका मुख हो !' सुभद्रने कल्पना दौड़ायी ।

'सच—हूबहू अजगरके मुख-जैसी !' सुबलने कल्पनाको पूरा रूपक बना दिया । 'वह गैरिक भाग ऊपरका, उसपर सूर्यकी किरणें पड़कर चमक रही हैं, जैसे वह ऊपरका ओष्ठ हो । उसीका प्रतिबिम्ब पड़नेसे यह नीचेका भाग लाल होकर नीचेका ओष्ठ बन गया है । दाहिने-बायें काले पाषाण गैरिक स्तरमें निकल आये हैं और उनमेंसे जल मन्द-मन्द स्रवित हो रहा है, जैसे लाला-लिप्त सर्पके दोनों जबड़े हों । ये उज्ज्वल-उज्ज्वल नुकीले पाषाण-शिखर दाँतोंकी भाँति लटक रहे हैं और यह खुरदरा चौड़ा द्विधा मार्ग जो इसमें जा रहा है, ऐसा लगता है जैसे सर्पकी बीचसे फटी जिह्वा हो । ऊपर दोनों गुफाओंसे लाल-लाल ज्योति निकल रही है । वे अजगरके नेत्रोंके समान जान पड़ती हैं, अवश्य भीतर दावाग्नि लगी है । वही उन गुफाओंसे दीख रही है ।'

'सर्पके श्वासके समान यह उष्ण वायु इसमें दावाग्निके कारण ही तो आ रही है !' श्रीदामने भी अपना भाग पूरा किया । 'जैसे सर्पने बहुत जीव खाये हों और उसकी श्वासमें दुर्गन्ध हो । बेचारे पशु-पक्षी दावाग्निमें भस्म हो रहे हैं । उन्हींकी गन्ध आ रही है !'

'आओ, भीतर चलकर देखें !' मणिभद्र आगे बढ़ा !

'कन्हैया तो अभी वहीं नाच रहा है !' सुबलने पीछे देखा ।

'बछड़े भी सब हाँक लो भीतर! हम सब इस अन्धकारमें जो सर्पके मुखके समान जान पड़ता है, छिप जायँगे । श्यामको ढूँढ़ने तो दो !' श्रीदामाको दूसरा कौतुक सूझ पड़ा ।

'कहीं यह सचमुच अजगर हुआ और भीतर जानेपर सबको गट्टसे निगल गया तो ?' मधुमङ्गलको इस दुर्गन्धित वायुसे भरे अन्धकारमें प्रवेश करना रुचिकर नहीं लग रहा है ।

'तू तो डरपोक है !' भद्रने परिहास किया। 'ऐसा हो भी तो बगुलेकी भाँति मर जायगा यह । कन्हैया कहीं चला नहीं गया है ! वह रहा—वह नाच रहा है !' ताली बजायी सबने इस बातपर । श्रीकृष्णके मुखकी ओर देखा और अँधेरेमें शीघ्रतासे छिपनेके लिये बछड़ोंको सम्मुख दौड़ाते हुए घुस गये ।

'हैं ! हैं !' श्यामसुन्दर सहसा चौंका। पुकारा उसने, परंतु बालकोंको तो शीघ्र छिप जानेकी धुन है । उन्होंने सुना ही नहीं ।

'ओह !' एक क्षणके लिये मुख गम्भीर हो गया। 'इस दुष्टके जीवनका क्या उपयोग—अपने लिये भी तो यह अपने घोर कर्मोंसे परिताप-संताप-पीड़ा ही प्रस्तुत करेगा। मेरे सखा, मेरे बछड़े, उनका विनाश तो नहीं ही होना चाहिये ।' कदाचित् कुछ इसी प्रकारकी बातें सोच रहा है वह ।

'अघ—उसने अभी बच्चों और बछड़ोंको निगला नहीं । वह काला लड़का तो अभी बाहर ही है । आ रहा है, वह भी आ रहा है । वह भीतर आये और मुख बंद कर लूँ !' प्रतीक्षा कर रहा है वह। वह आया उसके मुखमें । खुरदरी जिह्वापर चरण रखता सीधा गलेतक चला गया। भयसे विमानोंपर देवता हाय-हाय करने लगे । कंसने अट्टहास किया । उसके साथियोंने भी साथ दिया उसका ।

'मुख बंद कर लूँ !' अघने सोचा। हाय-हाय, मुख तो बंद ही नहीं होता। कदाचित् सब बछड़े और बालक गलेके छिद्रमें ही अटके हैं। उसे क्या पता कि वे तो मुखमें पहुँचते ही मूर्छित हो गये । गलेतक तो वह नीलमणि सरक गया है और अकेला वही पूरे छिद्रको रोककर खड़ा है, जैसे महाकाय हो गया है वह ।

गलेका गोल छिद्र, नासिकाका मिलनेवाला एक छिद्र और वहाँ, नेत्रोंके स्नायुछिद्र—वह विशाल अजगर ! बड़ी गिरिकन्दरा-सा उसका गला । परंतु कन्हैया तो ऐसा वहाँ अड़ा, जैसे उसका शरीर वहीं निरोधके लिये ही गठित हुआ हो। कहींसे तनिक भी वायु निकल नहीं पाती। सर्पने पूछ पछाड़ी। शरीर मोड़नेका प्रयत्न किया। उसके नेत्र प्राणरोधसे निकल आये। मस्तकमें वायु भरनेसे वह गुब्बारे-सा फूलता जा रहा है। नस-नस फट रही है। जोड़-जोड़ उखड़ रहे हैं। अन्तमें जैसे अधिक वायु भरनेपर फुग्गा फूटता है, फड़ाकसे मस्तक फट गया। बड़े वेगसे वायु निकली । उसी वेगसे उसके साथ मुखमें स्थित सब बालक और बछड़े बाहर कोमल हरित तृणभूमिपर गिर पड़े । पिचकारीमें भरकर उन्हें बाहर फेंक दिया गया हो जैसे ।

कन्हैया जैसे गया था, वैसे ही निकला। उसी जिह्वापर चरण रखता मुखसे ही । वायुके साथ दैत्यके शरीरसे एक दिव्य ज्योति निकली । वह महाज्वालाके समान ज्योति इस प्रकार चारों ओर मँडरा रही थी, जैसे किसीकी प्रतीक्षामें हो, किसीका अन्वेषण कर रही हो। श्यामसुन्दरने जैसे ही बाहर चरण रक्खा, वह उस चरणमें ही प्रविष्ट हो गयी।

देवता हर्षसे जयनाद कर रहे हैं। गगनसे पुष्प-वर्षा हो रही है। दूर—सघन वृक्षावलियोंके पीछे स्तब्ध, मूक कंस अपने रथपर बैठने जा रहा है मथुरा जानेके लिये और उसके अनुचर उसका अनुगमन कर रहे हैं। श्यामकी दृष्टि यहाँ नहीं है। उसके सखा, उसके बछड़े अस्त-व्यस्त इतस्ततः घासपर मूर्छित पड़े हैं। बड़ी ही करुणापूर्ण दृष्टिसे उसने उन सबकी ओर देखा। जैसे वे सब सोकर उठे हों, भागकर उन्होंने घेर लिया श्यामसुन्दरको ।

'बड़ी भयंकर थी उष्णता और दुर्गन्ध !' सब-के-सब श्रीकृष्णका एक-एक अङ्ग ध्यानसे देख रहे हैं। छूकर जान लेना चाहते हैं कि कन्हैयाको कहीं खरोंच तो नहीं लगी।

'कितना बड़ा अजगर है !' मधुमङ्गल अब भी भयसे उस महासर्पकी ओर देख रहा है। 'तूने मारा कैसे इसे ?'

'कहीं सुबलकी लाठीसे तो उसका सिर नहीं फूटा है ?' श्रीकृष्णने हँसते हुए पूछा।

'अरे हाँ, हम सबने लाठियाँ उठा रक्खी थीं । तालू ही फूट गया इसका !' एक साथ हास्य गूँज गया ।

'चलो, स्नान करें। चरण पिच्छल हो गये हैं; पटुकेमें और श्रीअङ्गोंपर भी कहीं-कहीं कुछ आर्द्रता आ गयी है। बछड़े और बालकोंके शरीर तथा वस्त्रोंपर सर्पके मुखका रस एवं रक्तके छींटे पड़े हैं। श्रीकृष्णचन्द्रने यमुनाजीकी ओर प्रस्थान किया।

'कन्हैया ! तू सर्पके मुखसे गिरा ग्रास हो गया है ।' श्रीदामने तनिक दूर हटकर न छूनेका नाट्य किया।

'तुझे तो रक्त लगा है !' उत्तर मिला।

'हम मुखसे जाकर मुखसे ही तो नहीं निकले !' इस तर्कमें सबका समर्थन है। सब हँस रहे हैं, तालियाँ बजा रहे हैं। आकाशमें दुन्दुभियाँ बज रही हैं, जयघोष हो रहा है, वहाँसे पुष्पोंकी झड़ी लगी है—यह सब देखनेका अवकाश उन्हें नहीं है।

उनके श्यामसुन्दरने अघको मार डाला ! अघको भी शुद्ध कर दिया और अब वे स्नान करने जा रहे हैं श्रीयमुनाजीमें। शुद्ध होनेके लिये ? क्रीड़ा करनेके लिये।

अघ—मर गया वह तो। उसका शरीर पड़ा है वहाँ। सूख गया धीरे-धीरे। श्रीकृष्णके सखा उसे छिपनेका गह्वर ही तो बनाना चाहते थे। उन्हींके लिये नहीं, समस्त व्रजवासियोंके लिये क्रीड़ा-गह्वर हो गया वह। आँखमिचौनीके समय बालकोंको छिपनेके लिये वह बड़ा सुन्दर स्थान हो गया।*

ईश्वरीय शक्तिकी जड़ आपके अंदर है

(लेखक—प्रो० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम्० ए०)

संसारमें हाथी, घोड़े, भैंसे, बैल इत्यादि बड़े शक्तिशाली जीव हैं। इनकी शारीरिक शक्तिकी सहायतासे मनुष्य बड़े-बड़े लट्ठे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर ले जाता है, पेड़ गिराता है, खेत जोतता है, कुँओंमेंसे जल निकालता है और भारी भरकम शिलाखण्डोंको ढोता है। घोड़े तीव्र गतिसे एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जाते हैं और मनुष्यकी आज्ञाओंका पालन करते हैं; परंतु स्वयं हाथी, घोड़े, बैल इत्यादिको यह ज्ञान नहीं है कि शक्ति उनके अंदर छिपी है। वे उनकी पीठपर बैठे या डंडेसे हाँकते हुए आदमीमें शक्ति समझते हैं और चार पसलीके आदमीको आत्मसमर्पण कर देते हैं। यदि उन्हें किसी प्रकार यह ज्ञान हो जाय कि आदमीमें उनकी अपेक्षा बहुत कम शक्ति है, तो वे क्षणभरमें उसे धराशायी कर सकते हैं। घोड़े, हाथी कभी उसके वाहन न रहें। सम्भव है वे मानवको निज वाहन बना लें, पर उन्हें अपने जीवनभर अपनी गुप्त शक्तियोंका ज्ञान नहीं होता और वे छोटेसे मनुष्यके गुलाम बने रहते हैं।

मानव-समाजमें भी उपर्युक्त नियम लागू होता है। हमें दो प्रकारके व्यक्ति मिलते हैं। एक तो वे हैं, जिन्हें अभीतक अपनी गुप्त शक्तियोंका ज्ञान नहीं हुआ है, अन्धकारमें पड़े परतन्त्रता और बेबसीका जीवन व्यतीत कर रहे हैं। दूसरे वे हैं, जिन्हें अपनी शक्तियोंका ज्ञान हो चुका है। अधिकांश व्यक्ति प्रथम वर्गके हैं जिन्हें शक्तिका ज्ञान नहीं है। ये व्यक्ति सदा किस्मतको रोया करते हैं। कभी संसारकी प्रतिकूलताको दोष दिया करते हैं। इन्हें स्वयं अपने ऊपर विश्वास नहीं है, अतः ये अपना जीवन परवशता, मजबूरी और लाचारीमें काट रहे हैं।

विश्वास कीजिये आपमें अनन्त शक्तियाँ भरी पड़ी हैं। ईश्वरने अपने पुत्र—मनुष्यको असीम शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, नैतिक, दैवी आत्मिक शक्तियोंसे परिपूर्ण कर पृथ्वीपर भेजा है। आपकी शक्तियाँ इन्द्रके वज्रोंसे अधिक शक्तिशालिनी हैं। आपका मस्तिष्क शक्तियोंका विशाल भण्डार है। आपके शरीरके अङ्ग-अङ्गमें बल, स्फूर्ति और तेज भरा हुआ है। आपकी आत्मा अद्भुत दैवी सामर्थ्योंकी पुञ्ज है। सूर्यके तेज तथा हृदयस्थ आत्मतेजमें कोई भेद नहीं है।

सच मानिये, आप ईश्वरके अंश हैं। ईश्वर सर्वोच्च शक्तियोंके केन्द्रविन्दु हैं। वस्तुतः वे सभी शक्तियाँ बीजरूपसे आपमें विद्यमान हैं, जो ईश्वरमें हैं। ईश्वर सत्-चित् आनन्दस्वरूप हैं। अभी आप अपने आपको शरीर मानते हैं। पर वास्तवमें आप सत्-चित् आनन्दस्वरूप आत्मा हैं। आप स्थूल नहीं, सूक्ष्म हैं। आप आत्मा हैं। आप अमर हैं। आप विश्वमें व्याप्त ईश्वरीय शक्ति हैं। आप दिव्य हैं। मनमें यह भाव मत लाइये कि 'मैं नीच हूँ। अशक्त हूँ। डरपोक अथवा कायर हूँ। शक्तिकी जड़ आपके भीतर है। ईश्वरका राज्य आपके भीतर है। आप व्यर्थ ही ईश्वरीय शक्तियोंको दुर्बल मानवके बनाये मठ-आश्रमोंमें अथवा गिरजाघरोंमें ढूँढ़ते फिरते हैं। ईश्वरीय दिव्यतम शक्तिका आदिस्रोत तो स्वयं आपको अन्तरिक्षमें प्रवाहित हो रहा है। उसीकी खोज निकालिये और दिव्य जीवन व्यतीत कीजिये।

* 'श्रीकृष्ण-चरित' पुस्तकसे। प्रकाशक—श्रीमोतीलाल बनारसीदास चौक, बनारस।

कभी न कहिये कि आप अमुक कार्य करनेके योग्य नहीं हैं अथवा आपमें उसके लिये पर्याप्त बल या साधन नहीं हैं। आपमें सब प्रकारके उच्चतम सामर्थ्य भरे पड़े हैं। आप अपने निश्चय, बल, संकल्पकी दृढ़ता, अटूट परिश्रमसे जो चाहें कर सकते हैं, आपकी सदैव विजय होनी है। यदि अपने इष्ट मार्गपर लगे रहें तो आप परिस्थितियोंको अवश्य बदल सकेंगे। पराजयका विचार मनमें रखना एक खतरा है। इसे सदाके लिये निकाल देना चाहिये। जैसा विचार मनमें आयेगा, वैसे ही कार्य प्रकट होगा। जैसा बीज होगा, वैसा ही वृक्ष उत्पन्न होगा। अतः कमजोरी, निर्बलता, पराजय, हीनत्वके विचार रखना एक खतरा है। कभी भी वह कटु फल उत्पन्न कर सकता है; क्योंकि विचार तो एक सूक्ष्म सक्रिय तत्त्व है। विचारोंके परमाणु मनःप्रदेशमें बिखरकर उसे अपने अनुकूल बना लेते हैं। राग, द्वेष, घृणा, स्वार्थ और ईर्ष्याके विचारोंका दूषित वातावरण मनमें अशान्ति उत्पन्न करता और संतुलनको छिन्न-भिन्न कर देता है। नाना प्रकारके उद्वेग और उलझनें उत्पन्न कर देता है। अशान्ति, भय, घबराहट, चिड़चिड़ापन, अस्थिरता सब गलत प्रकारके विचारोंके दुष्परिणाम हैं।

अतः अपनी शक्तिके प्रति मनमें अविश्वासकी दीन-हीन भावना मत आने दीजिये। अपने मानसिक वातावरणको भय, भ्रान्ति, शंका, संदेह और चिन्ताके मनोवेगोंसे मुक्त रखिये। ये निकृष्ट विचार मनुष्यकी शक्तिको पंगु करनेवाले हैं, अन्तःकरणकी श्रद्धाकी दुर्बलताके सूचक हैं। अपने ऊपर विश्वास करना ऐसा मन्त्र है जिससे बल बढ़ता है।

जैसा हम देखते, सुनते या सोचते हैं, वैसा ही हमारे अन्तर्जगत्‌का निर्माण होता है। हम जो-जो वस्तुएँ बाह्य संसारमें देखते हैं, हमारी अभिरुचिके अनुसार उनका प्रभाव हमारे अन्तःकरणपर पड़ता है। प्रत्येक अच्छी मालूम होनेवाली प्रतिक्रियासे हमारे मनमें एक मानसिक मार्ग बनता है। क्रमशः वैसा ही चिन्तन, विचार या कार्य करनेसे यह मानसिक मार्ग दृढ़ बनता जाता है। अन्तमें एक विचार ही आदत बनकर मनुष्यको अपना दास बना लेता है।

जो व्यक्ति अपनी शक्तियोंके प्रति असीम विश्वास बनाये रखने और उन्हें निरन्तर बढ़ानेका अभ्यास करता है, वह उन्नतिके पथपर चलता है। दूसरोंके और अपने चरित्रकी अच्छाइयोंपर ध्यान लगाइये। सर्वत्र अच्छाइयाँ, शक्तियाँ, दैवी गुण देखनेसे मनुष्य स्वयं शक्तियों और गुणोंका केन्द्र बन जाता है।

अच्छाई देखनेकी आदत एक प्रकारका पारस है। जिसके पास अच्छाई देखनेकी आदत है, वह उन्हींकी शक्तिसे दिव्य गुणोंकी वृद्धि करता है। उस केन्द्रसे ऐसा विद्युत्-प्रकाश प्रसारित होता है, जिससे सर्वत्र सत्यता और दिव्यताका प्रकाश होता है। जिस स्थानपर नैतिक माधुर्य एकीभूत हो जाता है, वहीं सच्चा आत्मिक सौन्दर्य विद्यमान है। अतः यह मानकर चलिये कि आप असीम शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियोंके मालिक हैं।

शक्तियोंका निरन्तर उपयोग कीजिये

जो शक्तियाँ ईश्वरीय देनके रूपमें प्रयोग, उपकार या समाज-सेवा आदिके लिये आपको दी गयी हैं, उनका निरन्तर उपयोग कीजिये। प्रतिदिन उन्हें कार्यमें लेनेसे शक्तियोंका विकास होता है पर निश्चेष्ट छोड़ देनेसे वे क्षीण हो जाती हैं। अंग्रेजीमें एक कहावत है 'प्रतिदिन काममें आनेवाली चाबी तेज चमकती है।' अर्थात् जो चाबी रोज काममें नहीं आती, जंग लगकर नष्ट हो जाती है। यही कहावत हमारी शक्तियोंके सम्बन्धमें भी है। हम जिस-जिस शक्तिसे काम लेते रहेंगे, वही पुष्ट रहेगी, शेष नष्ट हो जायगी। शक्तियाँ आपसे यह माँग करती हैं कि उनसे निरन्तर काम लिया जाय, कभी खाली न छोड़ा जाय। वे उस भूतकी तरह हैं जिसे कुछ-न-कुछ काम चाहिये, जो कभी भी आलस्यमें नहीं बैठ सकता।

उदाहरणके लिये अपने शरीरको ही ले लीजिये। यदि आपको खूब खिलाया-पिलाया जाय और जेलखानेमें बंद कर दिया जाय, जहाँ आप सारे दिन चारपाईपर पड़े रहें, तो पाचनक्रिया और रक्तसंचारमें खराबी आने लगेगी, शरीर दुबला हो जायगा, एक-एक क्षण काटना दूभर हो जायगा, प्रगाढ़ निद्राका आनन्द आपको न मिल सकेगा, भूख-प्यास, चेहरेका सौन्दर्य सब क्षीण हो जायगा। हमारा शरीर एक मशीनकी तरह है। जैसे व्यर्थ पड़े रहनेसे अच्छे-से-अच्छे इंजिनको जंग चाट जाता है और उसे चलाना कठिन हो जाता है, उसी प्रकार पहलवान-से-पहलवान व्यक्ति भी केवल खाय और पड़ा रहे, तो रोगी हो जायगा। आपने प्रायः उन साधुओंको देखा होगा, जो एक हाथ ऊँचा उठाये रहते हैं। बहुत समय व्यतीत होनेपर वह सूख जाता है। उसमें रुधिरका संचार बंद हो जाता है। उस हाथकी शक्तिका उपयोग न

होनेसे वे शक्तियाँ मारी जाती हैं । अतः हमें चाहिये कि अपने शरीरसे पर्याप्त कार्य लें, किसी अवयवको आलस्यके जंगमें न फँसने दें । शारीरिक शक्तियोंका उपयोग करनेसे शरीरका अङ्ग-अङ्ग शक्तिसे दमक उठेगा, हम बलवान् बन जायँगे, पुष्ट और बलिष्ठ हाथ-पाँवके स्वामी बनेंगे । व्यायाम क्या है ? व्यायाम वह विधि है जिसके द्वारा शरीरके सभी अवयवोंसे काम लिया जाता है । फलतः शक्तियाँ बढ़ती हैं ।

शरीरकी भाँति ही मस्तिष्क और बुद्धि भी निरन्तर उपयोग, नये-नये विषयोंके अध्ययन, स्वाध्याय, मनन, पठन-पाठन, भ्रमण, सद्ग्रन्थावलोकनसे बढ़ती है । प्रत्येक पुस्तक एक ऐसे मस्तिष्कका सत्सङ्ग है जिसके साथ रहकर हम नया ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं । नये-नये व्यक्तियोंसे मिलिये, नये दृश्य, नयी-नयी घटनाएँ देखिये और उनमें सार-तत्त्व, अनुभवपूर्ण उपयोगी तत्त्वोंको ग्रहण कीजिये । इन अनुभवोंसे आपको जीवनयात्रामें लाभ होगा ।

ग्रहण-शक्ति बढ़ाते चलिये

आपके अनुभव, संसारका इतिहास, समाजमें इर्द-गिर्द होनेवाली अनेक ऐसी घटनाएँ हैं, जिनसे हमारा ज्ञान बढ़ सकता है । हमारी प्रत्येक गलती हमें गुप्तरूपसे कुछ शिक्षा, कुछ उपदेश देती है, हमें आगे बढ़ाती है । इन अनुभवों, ग्राह्य वस्तुओं एवं उपदेशोंमें हम अपनी ग्रहण-शक्तिकी योग्यताके अनुसार ही उन्हें ग्रहण कर सकते हैं । यदि हम अपनी ग्रहण-शक्तिको बढ़ावें, जो देखते, सुनते या अनुभव करते हैं, उसे ग्रहण करें, स्मृतिमें रक्खें, तो प्रगतिके पथपर आगे बढ़ सकते हैं । जो घटनाएँ या अनुभव हमें मिलें, उन्हें ठीक तरह समझें, शङ्काओंका समाधान करें, सार-सार ग्रहण करें और व्यर्थको भूलें, भविष्यमें गलती न करें, तो पर्याप्त उन्नति कर सकते हैं ।

यह विश्वास रखिये कि परिस्थिति-निर्माणकी योग्यता आपमें भरी हुई है । हर व्यक्ति स्वयं अपने पुरुषार्थसे अपने संसारका निर्माणकर्ता है । आप उच्चतम ईश्वरीय शक्तियोंकी सामर्थ्य लेकर चल रहे हैं । कोई दुष्ट आपका मार्ग अवरुद्ध नहीं कर सकता, बाधाएँ ठहर नहीं सकतीं; क्योंकि आपके शरीर, मन, कर्मसे परमेश्वरकी दिव्य शक्तियाँ प्रवाहित हो रही हैं । ईश्वर आपके द्वारा अपने शुभ कार्य कर रहा है । ईश्वर आपके भीतरसे चमक रहा है । ईश्वरत्वको अपने द्वारा प्रकट कीजिये, ईश्वरमें रहिये-सहिये । ईश्वर होकर सात्त्विक पदार्थ खाइये और ईश्वर होकर ही पवित्र पदार्थ पीजिये । ईश्वरमें श्वास लीजिये और सत्का साक्षात् कीजिये । शेष शक्तियाँ स्वयं आपके पीछे-पीछे आती रहेंगी ।

यस्याखिलामीवहभिः सुमङ्गलै-
वाचो विमिश्रा गुणकर्मजन्मभिः ।
प्राणन्ति शुम्भन्ति पुनन्ति वै जगद्
यास्तद्विरक्ताः शवशोभना मताः ॥
(श्रीमद्भा० १० । ३८ । १२)

जब समस्त पापोंके नाशक उनके परम मङ्गलमय गुण, कर्म और जन्मकी लीलाओंसे युक्त होकर वाणी उनका गान करती है, तब उस गानसे संसारमें जीवनकी स्फूर्ति होने लगती है, शोभाका संचार हो जाता है, सारी अपवित्रताएँ धुलकर पवित्रताका साम्राज्य छा जाता है; परंतु जिस वाणीसे उनके गुण, लीला और जन्मकी कथाएँ नहीं गायी जातीं, वह मुर्देको ही शोभित करनेवाली है ।

उमा-महेश्वर

वंदौं आशुतोष उदार ।
शुभ्र गिरिपर योग-आसन, तन विभूषित छार ॥
जटा मध्य विराज शशि अरु भाल ज्वालागार ।
कटि वघंबर, नाग भूषण, सुभग शान्ताकार ॥
जग-जननि दिसि वाम राजति सकल छवि-आगार ।
नाथ ! जनपर द्रवहु बेगिहि, जेहिं न पुनि संसार ॥

—रामाधार शुक्ल

प्रियतम-मिलन

(सफल यात्रा)

प्रियतमसे मिलनेको उसके प्राण कर उठे हाहाकार।
गिना नहीं उसने, पथकी दूरीको, भयको किसी प्रकार॥
विकल, चल पड़ी वह निर्भय हो, बीहड़ वनमें बिना विचार।
दुःख-कष्ट बन गये सभी पथके पाथेय, सुखद आहार॥ १॥

नहीं ताकती किसी ओर वह, नहीं किसीसे भी डरती।
नहीं प्रलोभनमें पड़ती वह, नहीं चाह कुछ भी करती॥
पद-पदपर, पल-पल प्रियतमकी प्रिय सुधिमें आहें भरती।
चली जा रही अटल लक्ष्यपर, वह जगमें जीवित मरती॥ २॥

वस्तु मात्रसे मेरापन उठ गया मिट गया, जगका राग।
नहीं किसीमें द्वेष रह गया, जाग उठा मन विमल विराग॥
मिटी कामना विषयमात्रकी, रहा न असत् अहंका भाग।
ममता पूरी प्रभु चरणोंमें, अपनापन, अनन्य अनुराग॥ ३॥

तन-मन-भोग स्वर्ग-अपुनर्भवकी सुधि सारी सहज बिसार।
प्रिय आकर्षणसे खिंच वह जा पहुँची प्रियतमके दरबार॥
प्रेम-सुधाकी मधु धारासे प्रियतमके पद-पद्म पखार।
वह गिर पड़ी, अचेतन-सी हो, चेतन चरणोंमें अनिवार॥ ४॥

उठे प्राणधन, उसे उठाया, प्रेम-विकल भरकर अँकवार।
लगा लिया निज वक्षःस्थलसे, बही अश्रुओंकी शुचि धार॥
कोमल कर धर शीश प्राणधन मधुर दृष्टिसे उसे निहार।
अमिय मधुर वाणीसे फिर वे करने लगे सरस सत्कार॥ ५॥

दुर्लभ दर्शन-स्पर्श प्राप्त कर प्रियतमके, सुन प्रेमालाप।
आनन्दोदधि उछला, उसमें उठीं तरङ्गें अमित अमाप॥
धन्य हुई वह, मिटा सदाके लिये सकल भवका संताप।
रखा उसे निज हृदयदेशके मधु-मन्दिरमें प्रभुने आप॥ ६॥

—'अकिञ्चन'

मानसिक शक्तियोंका विकास

(लेखक—प्रो० श्रीलालजीरामजी शुक्ल, एम्० ए०)

मनुष्यके मनमें अनेक प्रकारकी शक्तियाँ हैं। मनुष्य अपनी शक्तियोंको अपनी भावनाके अनुसार विकसित करता है। जो व्यक्ति अपने विषयमें जैसा विचार करता है, वह अपने आपको वैसा ही बना लेता है। जिस व्यक्तिका जैसा निश्चय है, वह उसी रूपका है। अपना निश्चय मनुष्यके आत्मनिर्देशका कारण बन जाता है। यह आत्मनिर्देश मनुष्यको उसी ओर ले जाता है और उसकी शक्तियोंको उसी प्रकारसे विकसित करता है जिस तरहका निश्चय होता है।

निश्चयका आधार अपने आपके विषयमें ज्ञान है। अज्ञानावस्थामें किया गया कोई भी निश्चय निर्मूल और व्यर्थ होता है। जितना ही हम अपने विषयमें जानकारी बढ़ाते हैं, हमारा अपने विषयमें उतना ही अधिक उत्तम निश्चय होता है। हमारी मानसिक शक्तियाँ उसीके अनुसार विकसित होती हैं। जो व्यक्ति अपने आपको जाननेकी चेष्टा नहीं करता और संसारके साधारण झंझटोंमें फँसा रहता है, उसे अपने-आपके विषयमें कुछ भी स्थिर विचार नहीं रहते। वह अपने-आपके विषयमें वैसा ही सोचने लगता है जैसा कि दूसरे लोग उससे सोचवाना चाहते हैं। अपने विचारोंपर उसका कुछ भी नियन्त्रण नहीं रहता। जब दूसरे लोग उसके विषयमें सोचने लगते हैं कि वह बड़ा पतित है, दयनीय है, अथवा दुखी है, तो वह भी अपने विषयमें वैसा ही सोचने लगता है। बहुतसे मनुष्य समयके पूर्व इसलिये मर जाते हैं कि वे अपने विषयमें बाहरसे आनेवाले निर्देशोंका सामना नहीं कर पाते। उनकी इच्छा-शक्ति निर्बल रहती है। जैसी कल्पनाएँ दूसरे लोग उनके मनमें उठाना चाहते हैं, वैसी ही कल्पनाएँ उनके मनमें उठने लगती हैं। इस प्रकार वे अपनेको दुखी, पागल और अल्पायु बना लेते हैं। जबतक मनुष्य अपना आत्मज्ञान नहीं बढ़ाता, उसका निश्चय निराधार और डाँवाडोल रहता है। अतएव मनुष्यको बार-बार अपने विषयमें चिन्तन करना चाहिये।

आधुनिक विज्ञानने अणुकी शक्तिकी खोज की है। संसारका सबसे बड़ा अस्त्र 'अणु-बम' है। पिछली लड़ाईका अन्त दो ही 'अणु-बम'ने कर दिया। यदि 'अणु-बम' जापानके शहरोंपर नहीं डाले जाते तो लड़ाई और भी चलती। इस अणु-शक्तिकी खोज बहुत दिनोंसे हो रही थी। वैज्ञानिकोंको यह अंदाज लगा था कि अणुमें इतनी अधिक शक्ति है कि उसके द्वारा संसारका कोई भी कार्य सरलतासे किया जा सकता है। प्रत्येक अणुका एक विशेष प्रकारका संघटन है। एक अणु एक सूर्य-मण्डलके समान है। जिस प्रकार सूर्य-मण्डलमें एक सूर्य होता है और उसके पास नक्षत्र स्वयं घूमा करते हैं, उसी प्रकार एक अणुके भीतर एक न्यूक्लियस होता है, जो स्थिर रहता है अथवा अपनी कीलपर ही घूमता है और उसके आस-पास घूमनेवाले 'एलेक्ट्रोन' नामक परमाणु होते हैं। अणु भिन्न प्रकारके होते हैं। किसी अणुमें अधिक संख्यामें तो किसी अणुमें कम संख्यामें परमाणु होते हैं।

अणुके संघटनको तोड़ना अति कठिन है। इसके लिये वैज्ञानिकोंने एक विशेष प्रकारकी 'साइक्लोटोन' नामक मशीनोंका भी आविष्कार किया। भारतमें इस प्रकारकी एक ही मशीन है जो कलकत्ता विश्वविद्यालयमें है। अणु शक्तिकी पहचान पहले-पहल जर्मन वैज्ञानिकोंने की। लड़ाईके समय अणुको तोड़नेके अनेक प्रयास वहाँ होते रहे। अमेरिकाके वैज्ञानिक भी इस प्रयोगको उसी समय अपने यहाँ कर रहे थे। अणुको तोड़कर ही उसकी शक्तिका लाभ उठाया जा सकता है। अनेक प्रयोगोंके बाद अनेक सुविधाओंके कारण अमेरिकाके वैज्ञानिक ही अणुकी शक्तिको अपने उपयोगमें ला सके। यह शक्ति इतनी अधिक है कि यदि उसे विनाशकारी काममें लाया जाय तो संसारभरके सभी बड़े नगरोंका विनाश दो ही दिनमें हो जाय और यदि इस शक्तिका सदुपयोग किया जाय तो संसारके लोग दुर्लभ वस्तु प्राप्त कर लें। अभीतक विनाशकारी कामोंमें ही इस शक्तिका प्रयोग हुआ है, न जाने कब उसे मानव-कल्याणके काममें लाया जायगा। अणु-शक्तिका जो भी उपयोग हो, उससे यहाँ हमारा प्रयोजन नहीं। अणुकी शक्तिके विषयमें चर्चा करनेका केवल इतना ही प्रयोजन है कि हम अपने आपके विषयमें तथा अपनी शक्तिसे परिचित हों। उपनिषदोंके रचयिता ऋषिने आत्माको अणुका अणु और महान्-से-महान् बताया है।

यह हमारा आत्मा छोटे-से-छोटा और बड़े-से-बड़ा है जिस प्रकार अणु, जिसे अणुवीक्षण यन्त्रसे भी नहीं देखा जा सकता, महान् शक्तिशाली है। अणु, एण और आत्मा एक ही धातुसे निकले हुए शब्द जान पड़ते हैं। यह शब्द-

विन्यास करनेवालोंका काम है कि वे इन शब्दोंके धातुका पता लगावें। पर यह निश्चित है कि ये तीन शब्द उस शक्तिका बोध करते हैं जो कि कल्पनातीत है। आश्चर्यकी बात है कि अणुशक्तिके विषयमें तो वैज्ञानिकोंने इतना अधिक आविष्कार कर डाला, पर आत्माकी शक्तिके विषयमें, जिसने वास्तवमें अणुशक्तिकी खोज की, कुछ भी आविष्कार नहीं किया। इतना ही नहीं, हम अपने वैज्ञानिक ज्ञानकी वृद्धिके साथ अपने-आपको और भूलते जा रहे हैं।

आत्माकी शक्ति वैसी ही विचित्र है जैसी कि अणुकी। इस प्रकारके निश्चयमें तो कोई भी संदेह होना ही नहीं चाहिये। हमारा शरीर ही अनेक अणुओंका बना है। इन अणुओंमें कितनी शक्ति केन्द्रित है—इसकी कल्पना कौन कर सकता है ? दुबले-से-दुबला मनुष्य अपने अणुओंकी शक्तिसे यदि चाहे तो संसारभरको नष्ट कर दे सकता है। पर मनुष्य शरीरमात्र नहीं है। वह चेतन प्राणी है और उसे अपने-आपको क्रियावान् करने एवं नियन्त्रित रखनेकी शक्ति है। इतना ही नहीं, वह अपने-आपको जान सकता है। ये शक्तियाँ जड अणुमें नहीं हैं। जड अणु न तो स्वयं गतिमान् हो सकता है और न उसमें आत्मज्ञानकी शक्ति ही है। जीवित अणुमें यह शक्ति है पर उसमें अपने-आपको जाननेकी शक्ति नहीं है। अतः उसमें आत्मनियन्त्रणकी भी योग्यता नहीं है। चेतन अणु, जो मनुष्यके रूपमें रहता है, न केवल शक्ति-केन्द्र है, प्रत्युत वह क्रियावान् एवं ज्ञानवान् भी है। अपने-आपके विषयमें चिन्तन न करनेके कारण ही वह अपने-आपको दयनीय बना लेता है। आत्म-ज्ञानके अभावमें बाहरी विचार मनुष्यके मस्तिष्कमें स्थान पा लेते हैं। इन विचारोंके कारण ही मनुष्य अपने-आपको संसारका एक तुच्छ प्राणी समझने लगता है।

मनुष्य एक चेतन अणु है। अणुशक्तियोंको बाहर निकालनेके लिये दूसरे लोगोंको प्रयत्न करना पड़ता है। स्वयं अणु न तो अपनी शक्तिका ज्ञान ही रखता है और न उस शक्तिको प्रकाशित ही कर सकता है। जड अणुकी शक्तियोंको प्रकाशित करनेके लिये चैतन्य अणुकी सहायता-की आवश्यकता है। चैतन्य अणु अपनी शक्ति अपने-आप जान सकता है। वह स्वयंको मनचाहा बना सकता है। इस कार्यमें लगन भरकी आवश्यकता है। जिस प्रकारकी लगन वैज्ञानिकोंने जड अणुकी शक्तिकी खोजमें दिखायी उससे कहीं अधिक लगन चैतन्य अणुकी शक्तिका पता लगानेमें आवश्यक है।

जिन ढूँढ़ा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ।
जो बौरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठ॥

आत्मज्ञान संसारका सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। इससे मौलिक कोई दूसरा पदार्थ नहीं है। पर यह उसे ही प्राप्त होता है जो धुनका पक्का है। आत्मज्ञान प्राप्त करते समय अनेक प्रकारकी बाधाएँ और संकट उत्पन्न होते हैं। जो लोग इन बाधाओंके होते हुए भी कर्तव्यसे नहीं हटते, वे ही आत्मज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इस लगनको दृढ़ बनानेके लिये आत्मज्ञानकी मौलिकता-पर बार-बार विचार करना आवश्यक है। आत्म-ज्ञान प्राप्त होनेपर मनुष्य उसी प्रकार निडर हो जाता है जिस प्रकार 'एटम-बम' के प्राप्त होनेपर राष्ट्र निर्भीक हो जाता है।

दीपमालिका जगाई है

मानस मलीनताई, सबै बाहर निकासि
निज हिय मंदिर श्री, स्वच्छ जो बनाई है।
तामें शुभ श्यामा श्याम, ध्यान धरि नाम दोऊ
मानो मणि दीप जीह, देहरी बिठाई है॥
मंजु दीप ज्योति रूप, कीर्ति कमनीय पुनि
विश्व चहु ओर अति हर्षित फलाई है।
भाखत 'वीरेश' उभै-लोक सुख दैन सोई
साँची जिय जासु दीप-मालिका जगाई है॥

—वीरेश्वर उपाध्याय

व्यवहारका आदर्श

[कहानी]

(लेखक—श्री 'चक्र')

'आप मुझे क्षमा करें ! मैं आगेसे सावधान रहूँगा ।' रामसिंहने दोनों हाथ जोड़े । वैसे उनकी कोई भूल नहीं थी । गाय रातमें रस्सी तुड़ाकर भाग गयी और थोड़ा-सा खेत चर गयी । वह क्या जाने कि कौन-सा खेत किसका है । पशु कभी रस्सी तोड़ ही नहीं सकेगा, ऐसी व्यवस्था किसान कैसे कर सकता है ।

'अपने पशु सम्हालकर रखना चाहिये !' गाँवका सबसे झगड़ालू आदमी है कल्पनाथ । उसके मुँहमें आता है वह बके जा रहा है । रामसिंह उसकी क्षतिपूर्ति करना चाहते हैं, इसमें भी उसे अपना अपमान जान पड़ता है ।

'देखो भैया ! मैं हाथ जोड़ता हूँ, पैर पड़ता हूँ, इस समय तो चले जाओ ।' रामसिंहने सशंक भावसे पीछे देखा—'लल्लन घरपर ही है और कहीं वह बाहर आ गया''।'

'क्या कर लेगा वह और क्या कर लोगे तुम''।' कल्पनाथ गरज उठा; किंतु बोलते-बोलते ही रुक गया ।

'कौन है रे ? भैयाको तू-तड़ाक करने आया है तू ?' केवल लँगोट लगाये लल्लन घरके भीतरसे दौड़ता आ रहा था । उसके नेत्र लाल हो रहे थे, मुख तमक रहा था । आते ही कल्पनाथको उसने अपने हाथोंपर सिरसे ऊपर उठा लिया ।

'लल्लन !' रामसिंहने पकड़ा छोटे भाईका हाथ और नेत्र कड़े किये ।

'अच्छा अभी तो तुझे छोड़ देता हूँ ।' लल्लनने धीरेसे कल्पनाथको नीचे खड़ा कर दिया—'चुपचाप चले जाओ ! तुमने भैयाको अटपटी बातें कही हैं, याद रखना !'

'लल्लन ! चल भीतर !' रामसिंहने हाथ पकड़ा और डाँटते हुए खींचा घरकी ओर । कल्पनाथ कुछ भुनभुनाता हुआ खिसक गया था । 'तुझे यहाँ भेजा किसने ?'

'मैं दूध पीने बैठा था ।' उसने कहा 'तुम्हारे भैयासे कोई झगड़ रहा है !' लल्लनके नेत्र अभी भी अंगार हो रहे थे । वह पीछे मुख घुमाकर बार-बार देख रहा था । उसके रहते कोई उसके भैयाको आधी बात कह दे ! 'देखूँगा मैं इसे ।'

'किसे देखेगा ? कल्पनाथको कुछ कहा तो अच्छा नहीं होगा ।' रामसिंहने डाँटा—'इतना बड़ा हो गया और बचपन जाता नहीं । दूधका ग्लास फेंक आया है, एक आदमी अपने अड़ोसी-पड़ोसीसे हिलमिलकर न रहे, दो खरी-खोटी भी सह न सके तो आदमी काहेका । सबसे लड़ते रहना कोई आदमीका काम है ।'

× × ×

दो भाई हैं—सगे भाई नहीं, सौतेले भाई हैं रामसिंह और लल्लनसिंह; किंतु लोग इन्हें राम-लक्ष्मणकी जोड़ी कहते हैं । रामसिंह तब असंतुष्ट होते हैं जब लल्लन उनसे पहिले रातको उठकर खेतपर चला जाता है या गायोंका गोबर उठा डालता है सवेरे जब वे खेतपर गये होते हैं । 'जब तुझे ही घर सम्हालना है तो ले सम्हाल । मैं तीर्थ करने जाता हूँ ।'

'भैया !' लल्लन बड़े भाईके सामने भीगी बिल्ली बना रहता है । गाँवका सबसे बलिष्ठ युवक, अखाड़ेके युवकोंका उस्ताद लल्लनसिंह, किंतु बड़े भाईके सामने वह जैसे छोटा बचा है ।

'किसने कहा था तुझे यह सब करनेको ?' रामसिंहके लिये लल्लन जैसे बहुत छोटा बालक है । अभी उसके खेलने-खानेके दिन हैं । वह दूध पिये और अखाड़ेकी शोभा बढ़ावे—'मैं मर तो नहीं गया । मर जाऊँगा तो सम्हालना खेत-खलिहान ।'

'भैया !' रो पड़ता है लल्लनसिंह बच्चोंके समान फूट-फूटकर । अपने स्नेहमय भैयाके मुखसे कोई अशुभ बात निकले'' ।

'रो मत !' भैया द्रवित हो उठते हैं—'तुझे इन खटपटोंमें पड़नेकी आवश्यकता नहीं है । अखाड़ेपर जानेमें देख देर हो गयी ।'

रामसिंहको प्रायः यह कहते सुना जाता है—'मरते समय पिताजीने कहा था 'बेटा ! लल्लनके अब तुम्हीं पिता हो !'

बात दोनों भाइयोंतक ही नहीं है । घरके भीतरका सौहार्द भी अद्भुत है । लल्लनकी स्त्री 'जीजी ! जीजी !' की रट लगाये रहती है दिनभर । लल्लनके लिये घरमें 'भाभी' को छोड़कर जैसे कोई है ही नहीं । उसके भोजन, कपड़े, दूध—भाभीको उसकी इतनी चिन्ता रहती है जैसे माताको छोटे बच्चेकी रहती हो ।

'क्यों री ! बहुत बलवान् हो गयी है तू ? इतनी रात रहते उठ पड़ी, बीमार होना है क्या ?' भाभी भी तभी रुष्ट होती हैं जब लल्लनकी स्त्री उनसे पहिले उठकर आटा पीसने बैठ जाती है, बर्तन मल लेती है या घरमें झाड़ू लगा डालती है ।

'नींद खुल गयी थी, देखा यही कर लूँ !' लल्लनकी स्त्री सेवाका कुछ न कुछ भाग झपट ही लेती है और उसके लिये 'जीजी'की डाँट भी सह लेती है । वह कह भी देती है—'तुम दिनभर काम करते-करते थक जाया करो और मैं बैठी देखती रहूँ—यह मुझसे तो नहीं होता ।'

'अब तो यह नानीकी भाँति बोलने लगी है ।' रामसिंहकी स्त्री रुष्ट होकर भी नहीं हो पातीं । उनकी समझसे उनकी देवरानी अभी निरी बच्ची है । उन्हें डर लगा रहता है कि चक्की चलाने या भरा घड़ा उठानेसे उसे 'कुछ' हो जायगा । लेकिन जब वे रुष्ट होती हैं—बहुत रुष्ट होना चाहती हैं तो वह धबसे उनकी गोदमें ही आ बैठती है और कहने लगती है—'जीजी ! ले थप्पड़ मार दे ।' ऐसी बच्चीपर कोई रुष्ट हो कैसे सकता है ?

× × ×

'लल्लनने धोबीको पूरा एक° बोझ दे दिया चनेका । खेत कट रहा है, वहाँ केवल खड़े रहनेका काम है । रामसिंहके लिये ऐसे कामोंके देखने-करनेका पात्र लल्लन ही है । जहाँ थोड़ा भी श्रम पड़ता हो, वे स्वयं वहाँ जाना चाहते हैं । आज उनसे गाँवके एक पड़ोसीने बड़ी हितैषिता दिखायी—'इस प्रकार लुटाना अच्छा नहीं । लल्लन अभी समझता नहीं ।'

'लल्लन ! तू कंजूस हो गया है ?' संध्या समय रामसिंहने छोटे भाईको हँसते हुए उलाहना दिया—'ये बेचारे नाई-धोबी-लुहार—ये वर्षभर सेवा करते हैं । इन्हें हम देते क्या हैं ? फसलपर ही इनकी आशा रहती है । खेत-खलिहानके समय भी इन्हें न दिया जाय तो इनके बाल-बच्चे कहाँ जायँगे । इनको कम-से-कम इतना तो देना चाहिये कि इनका जी न दुखे । धोबी, नाई जो आवे उससे कह दिया कर कि वह जितना एक बारमें ले जा सके, बाँध ले ।'

लेकिन भैयाका यह स्नेह दूसरे ही दिन दूसरे रूपमें प्रकट हुआ । वे खेतसे लौटे तो किसीने कुछ कह दिया मार्गमें । बात साधारण-सी थी, लल्लनने तनिक हँसी की थी पानी भरनेवाली कहाँरिनसे । कहनेवालेने भी विनोदमें ही कहा था; किंतु भैयाने चारेका भार द्वारपर फेंका और वैसे ही चल पड़े अखाड़ेकी ओर ।

लल्लन अखाड़ेमें जोर करा चुका था । वह बैठ गया था एक ओर । कई युवक उसके कंधे, हाथ और पैर मल रहे थे । पूरा शरीर धूलि एवं पसीनेसे लथपथ हो रहा था ।

'अब तेरे पंख जमने लगे हैं !' भैया तमतमाये आये और उन्होंने तड़ातड़ पाँच-सात थप्पड़ धर दिये लल्लनके मुखपर । वहाँ खड़े युवक देखते रह गये । कोई दूसरा होता तो''लेकिन भैयाका कोई क्या कर सकता था । लल्लनने चूँ नहीं की । उसे हाथ पकड़कर भैया घसीटते हुए घर ले चले—'गाँवकी बहू-बेटियोंपर तू अब आवाजें कसने लगा है । घर चल तो दिखाता हूँ ।'

'तुमने मारा है ?' घर पहुँचनेपर तो भाभी दौड़ आयीं आगे । उन्होंने रामसिंहका हाथ झटक दिया—'अपने छोटे भाईपर हाथ उठाते लज्जा नहीं आयी तुम्हें ?' पतिपर वे पहिली बार असंतुष्ट हुई थीं ।

'इससे पूछ कि क्या कर आया है यह ।' रामसिंहने भाईका हाथ छोड़ दिया था । उनका रोष ठंढा पड़ने लगा था ।

'ऐसा क्या अनर्थ किया होगा !' भाभीने स्नेहपूर्वक पुचकारा—'तुम भीतर चलो । ये अब सठिया गये हैं ।'

'भैया ! तुम मुझे खूब पीटो ।' सहसा भाभीका हाथ छुड़ाकर लल्लन भैयाके पैरोंपर गिर पड़ा । वह फूट-फूटकर रो रहा था—'भैया ! मुझे पीटो चाहे जितना, किंतु मुझसे रूठो मत । अब मुझसे ऐसी भूल नहीं होगी ।'

'अच्छा उठ !' भैयाने उठा लिया छोटे भाईको । वे उसका मुख पोंछ रहे थे अपने गमछेसे—'भगवान्ने बल दिया हो तो झुककर चलना चाहिये । सदाचारको कठोरतासे निभाना चाहिये । औरोंसे तुम्हें अधिक सावधान और संयमी रहना है, यह भूलो मत ।'

× × ×

'आप नहीं सम्हालें तो मेरी लज्जा नहीं रहेगी !' कल्पनाथ गाँवमें सबसे झगड़ालू है । कोई नहीं जिससे उसकी खटपट न हुई हो । मिलकर चलना उसने सीखा नहीं ।

कोई उसके हितैषी नहीं। कोई उसका सहायक नहीं। अब उसकी कन्याका विवाह है। बारात आनेवाली है; किंतु उसे सहयोग नहीं मिल रहा है। वह सीधे रामसिंहके यहाँ आया और उनके पैरोंकी ओर झुका।

'तुम यह क्या करते हो ?' रामसिंहने उसे पैर छूनेसे रोक लिया। 'तुम्हारी पुत्री मेरी पुत्री नहीं है क्या ? घर चलो, मैं अभी आ रहा हूँ।'

पूरी व्यवस्थाका भार उठा लिया रामसिंहने। लल्लन और उसके अखाड़ेके युवक दिन-रात एक करके दौड़-धूप कर रहे थे। इतनी उत्तम व्यवस्था—परंतु जहाँ व्यवस्था करनेवालेके प्राण एकाकार हो रहे हों, वहाँ त्रुटि सम्भव कैसे है।

'डाकू ! डाकू आये हैं !' विघ्न भी किस बुरे मुहूर्तमें आते हैं ! कल्पनाथके आँगनमें पूरा ग्राम एकत्र था। कन्याके पाणि-ग्रहणका उपक्रम हो चुका था और किसी बच्चेने दौड़ते-हाँफते आकर समाचार दिया—'गाँवके सबसे सम्पन्न व्यापारीका घर डाकुओंने घेर लिया है।'

'उस बेचारेके घर कोई नहीं। वे दोनों भाई रोगी हैं और घरके भीतर दोनोंकी स्त्रियाँ हैं, कन्या है। नौकर तो आ गये हैं यहाँ विवाहमें !' लोगोंमें बेचैनी और फुसफुसाहट प्रारम्भ हुई। पर डाकुओंके सामने जानेका साहस कौन दिखावे।

'लल्लन ! तुम आगे जाओ और डाकुओंको रोको।' रामसिंहने इधर-उधर देखकर छोटे भाईको मण्डपमें देख लिया—'विवाहकार्य चलता रहेगा। फेरे पड़े और मैं भी आया।'

लल्लन निकला शीघ्रतापूर्वक और उसे जाते देख कई युवक उसके साथ हो गये। लाठियाँ सम्हालीं सबने और डाकुओंको जा ललकारा।

'मरना न हो तो वहीं खड़े रहो।' डाकुओंने भी सामना कर लिया। उनकी संख्या पर्याप्त अधिक थी। केवल लँगोट लगाये, पूरे शरीरमें तेल पोते, हाथोंमें लाठियाँ, बल्लम, गँड़ासे लिये वे भी मार्ग रोककर खड़े हो गये थे।

'पत्थर चलाना है।' लल्लनको ठीक समय उपाय सूझ गया। युवकोंने ईंट, मिट्टीके डले, खपरैल—जो हाथमें आया, फेंकना प्रारम्भ किया। परंतु डाकुओंका दल विचलित नहीं हुआ। वे केवल आड़में हो गये। उनके जो साथी घर-के भीतर घुस चुके थे, वे अपना काम कर रहे थे। बाहर-वालोंको तो केवल इन लोगोंको रोके रखना था।

'भैया !' पता नहीं कितनी देर बीती, भैया दिखायी पड़े लल्लनको। वे दौड़ते आये थे और सीधे लाठी उठाये डाकुओंके समीप पहुँच गये थे। एक डाकूकी लाठी पड़ी उनपर—पता नहीं उनपर या उनकी लाठीपर; किंतु लल्लनके साथका एक युवक चिल्ला उठा—'भैयाको लाठी लगी।'

'भैयाको लाठी लगी !' लल्लनके नेत्रोंमें रक्त उतर आया। वह लाठी उठाये टूट पड़ा। टूट पड़े उसके साथके युवक और जब कोई प्राणोंका मोह छोड़कर आगे बढ़ता है—सौको भी वह अकेला भारी पड़ता है।

डाकुओंमेंसे कुछ गिरे, कुछ भागे। गाँवके और बारात-के लोग भी आ गये थे। जो डाकू पकड़े गये, प्रायः बुरी तरह वे घायल थे। लेकिन लल्लनको पकड़ना सबसे कठिन था। वह अंधाधुन्ध लाठियाँ चलाये जा रहा था। जब उसे रोक लिया गया, भूमिपर गिर पड़ा वह।

'भैया !' लल्लनके मुखमें एक ही शब्द था। उसके सिरसे रक्त चल रहा था। भुजाओं और कंधोंपर लाठियाँ लगी थीं। एक भुजापर भालेने बड़ा-सा घाव कर दिया था।

'लल्लन !' भैया उसका मस्तक गोदमें लिये वहीं भूमिपर बैठे थे। उन्हें आज अपने छोटे भाईपर गर्व था—'तुमने मेरा स्नेह सफल कर दिया।'

लल्लनके लिये उपचारकी चिन्ता करनेवाला तो आज पूरा गाँव हो गया था। स्त्रियाँ कह रही थीं—'परायेकी आगमें भाईको ढेल देनेवाला भाई धन्य है ! रामसिंहने आज गाँवकी लाज बचा ली।'

अहिंसा परम धर्म और मांसभक्षण महापाप

(मांसभक्षणसे सब प्रकार हानि)

अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परं तपः ।
अहिंसा परमं सत्यं यतो धर्मः प्रवर्तते ॥
अहिंसा परमो धर्मस्तथाहिंसा परो दमः ।
अहिंसा परमं दानमहिंसा परमं तपः ॥
अहिंसा परमो यज्ञस्तथाहिंसा परं फलम् ।
अहिंसा परमं मित्रमहिंसा परमं सुखम् ॥
सर्वयज्ञेषु वा दानं सर्वतीर्थेषु वा प्लुतम् ।
सर्वदानफलं वापि नैतत् तुल्यमहिंसया ॥

(महाभारत-अनुशासनपर्व)

'अहिंसा परम धर्म है, अहिंसा परम तप है, अहिंसा परम सत्य है, अहिंसासे ही धर्मकी उत्पत्ति होती है । अहिंसा परम संयम है, अहिंसा परम दान है, अहिंसा परम यज्ञ है, अहिंसा परम फल है, अहिंसा परम मित्र है और अहिंसा परम सुख है । सब यज्ञोंमें दान किया जाय, सब तीर्थोंमें स्नान किया जाय, सब प्रकारके दानोंका फल प्राप्त हो, तो भी उसकी अहिंसाके साथ तुलना नहीं हो सकती ।'

सभी धर्मग्रन्थोंने अहिंसाकी महिमा गायी है । जैन, बौद्ध-धर्म तो अहिंसाका ही प्रधानरूपसे प्रतिपादन करते हैं । ईसाई, इस्लाम तथा पारसीधर्ममें भी अहिंसाकी प्रशंसा की गयी है । महात्मा ईसा कहते हैं—

'Thou shalt not kill, and ye shall be holy man unto me neither shall ye eat any flesh that is torn of beasts in the field."

(J. Christ)

'तू किसीको मत मार । तू मेरे समीप पवित्र मनुष्य होकर रह । जंगलोंके प्राणियोंका वध करके उनका मांस मत खा ।'

बाइबिलमें एक अवतरण आया है—'ऐ देखनेवाले ! देखते क्या हो, मारे जानेवाले जानवरोंके लिये अपनी जबान खोलो ।'

इसी प्रकार कुरानमें लिखा है—'हरा पेड़ काटनेवाले, मनुष्य खरीदनेवाले, जानवरको मारनेवाले तथा दूसरोंकी स्त्रीसे कुकर्म करनेवालेको खुदा मुआफ नहीं कर सकता । खुदा उसीपर दया दिखाता है, जो उसके बनाये जानवरपर दया दिखाता है ।'

सुरात-ए-हजमें लिखा है—'खुदा तुम्हारी कुर्बानीमें जानवरका मांस और लहू नहीं चाहता । वह सिर्फ तुम्हारी पवित्रता चाहता है ।'

फिरदौसीने कहा है—

'न तो पशुओंका खाना और न पशुओंका शिकार ही करना । यह हमारा जरथुस्ती नेक धर्म है ।'

महात्मा गांधीजीके महान् त्याग तथा सक्रिय उपदेशसे अहिंसाकी महिमा आजके युगमें भी फैल रही है । अहिंसाकी प्रशंसा सभी करते हैं । परंतु आज अहिंसाका अर्थ बहुत ही संकुचित कर दिया गया है । किसी मनुष्यपर प्रहार करना, मनुष्यको मारना, पत्थर फेंकना, आग लगाना, किसी दल-विशेषके विरोधमें नारे लगाना, किसीके स्वार्थमें हानि पहुँचाना, जबरदस्ती करना—बस, मनुष्योंके सम्बन्धित इन्हीं तथा ऐसी ही कुछ और क्रियाओंको हिंसा माना जाता है और इनसे बचनेको अहिंसा । मनुष्य अपने स्वार्थसाधनके लिये, अपने खेतों-बागोंकी रक्षाके लिये, अपने पापी पेटका गढ़ा भरनेके लिये, जीभके स्वादके लिये, मनोरञ्जनके लिये, अनुसंधानके लिये और औषध-निर्माण आदिके लिये चाहे, जितने प्राणियोंको, चाहे जैसे कष्ट दे, चाहे जितनी संख्यामें मारे इसमें कोई भी हिंसा नहीं है । हिंसाकी इसी व्याख्याके अनुसार आज मनुष्येतर प्राणिमात्रका मांस खा जानेवाले लोग भी अपनेको 'अहिंसक' बतलाते और अहिंसाकी दुहाई देते हैं तथा अपनी व्याख्याकी हिंसाको हिंसासे ही रोकना भी चाहते हैं । यह अहिंसाकी विडम्बनामात्र है । शास्त्रकारोंने, महात्माओंने तो 'प्राणिमात्रकी हिंसाको हिंसा बतलाया है और उससे सर्वतोभावसे सर्वथा बचनेको ही अहिंसा' माना है । महर्षि पतञ्जलि हिंसाकी व्याख्या करते हुए कहते हैं—

वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोध-मोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ।

(योगदर्शन २ । ३४)

'हिंसा आदि वितर्क तीन प्रकारके होते हैं, स्वयं किये हुए, दूसरोंसे करवाये हुए और अनुमोदन किये हुए । वह

तीन प्रकारकी हिंसा लोभ, क्रोध तथा मोहके कारण होनेसे (३×३=९) नौ प्रकारकी हो जाती है और नौ प्रकारकी हिंसा मृदु, मध्य और अधिमात्रासे होनेके कारण (९×३=२७) सत्ताईस प्रकारकी हो जाती है। ये हिंसादि दोष अनन्त दुःख और अज्ञान देनेवाले हैं। यही प्रतिपक्षभावना है।' यही सत्ताईस प्रकारकी हिंसा शरीर, मन और वाणीसे होनेके कारण इक्यासी प्रकारके भेदोंवाली बन जाती है। फिर मांस-भक्षी लोग तो प्राणिहिंसाके प्रधान हेतु हैं, वे कैसे अपनेको 'अहिंसक' मान सकते हैं? महाभारतमें कहा है—

न हि मांसं तृणात् काष्ठादुपलाद् वापि जायते।
हत्वा जन्तुं ततो मांसं तस्माद् दोषस्तु भक्षणे॥
(अनुशासनपर्व)

'मांस घास, लकड़ी या पत्थरसे पैदा नहीं होता, वह तो जीवोंकी हत्या करनेपर ही मिलता है। इसलिये मांसभक्षणमें बहुत दोष है।'

मांस खानेवाले लोग संसारमें हैं, इसीलिये प्राणियोंकी हिंसा होती है, इसीलिये जगह-जगह कसाईखाने बने हैं। कसाई मांसखोरोंके लिये ही प्राणियोंकी हत्या करता है।

मनुमहाराज कहते हैं—

अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः॥
(मनुस्मृति ५। ५१)

'समर्थन करने या अनुमति देनेवाला, अङ्ग काटनेवाला, मारनेवाला, (हिंसाके लिये पशु-पक्षी और मांस) खरीदनेवाला, बेचनेवाला, पकानेवाला, परोसनेवाला और खानेवाला—सभी हत्यारे कहलाते हैं।' महाभारतमें कहा गया है—

धनेन क्रयिको हन्ति खादकश्चोपभोगतः।
घातको वधबन्धाभ्यामित्येष त्रिविधो वधः॥
आहर्ता चानुमन्ता च विशस्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपभोक्ता च खादकाः सर्व एव ते॥
(अनुशासनपर्व)

'मांस खरीदनेवाला धनसे प्राणिहत्या करता है, खानेवाला भोगसे करता है और मारनेवाला पशुको बाँधकर तथा मारकर हिंसा करता है। जो मनुष्य हत्या करनेके लिये पशुको लाता है, उसे मारनेकी अनुमति देता है, काटता है तथा खरीदता, बेचता, पकाता और खाता है। ये सभी पशुहत्यारे और मांसखोर ही समझे जाते हैं।'

स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति।
नास्ति क्षुद्रतरस्तस्मात् स नृशंसतरो नरः॥
(अनुशासनपर्व)

'जो मनुष्य दूसरेके मांससे अपना मांस बढ़ाना चाहता है, उससे बढ़कर अति नीच और कोई नहीं है, वह अति निर्दयी है।'

मांस खानेवालोंको क्या फल मिलता है?

स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति।
अविश्वास्योऽवसीदेत् स इति होवाच नारदः॥
(महाभारत-अनुशासन)

श्रीनारदजी कहते हैं—'जो दूसरेके मांससे अपना मांस बढ़ाना चाहता है, वह विश्वासपात्र नहीं रहता और उसे दुःख उठाना पड़ता है।'

स्वमांसं परमांसेन यो वर्धयितुमिच्छति।
उद्विग्नराष्ट्रे वसति यत्र यत्राभिजायते॥
(महाभारत-अनुशासन०)

'जो दूसरेके मांससे अपना मांस बढ़ाना चाहता है, वह जहाँ कहीं भी जन्म लेता है सदा बेचैन ही रहता है।'

भीष्मपितामह धर्मराज युधिष्ठिरसे कहते हैं—

ये भक्षयन्ति मांसानि भूतानां जीवितैषिणाम्।
भक्ष्यन्ते तेऽपि तैर्भूतैरिति मे नास्ति संशयः॥
मां भक्षयति यस्मात् स भक्षयिष्ये तमप्यहम्।
एतन्मांसस्य मांसत्वं ततो बुद्ध्यस्व भारत॥
घातको हन्यते नित्यं तथा वध्येन बन्धकः॥

'जो जीवित रहनेकी इच्छावाले प्राणियोंका मांस खाते हैं, वे भी उन प्राणियोंके द्वारा दूसरे जन्ममें खाये जाते हैं। इस विषयमें मुझे तनिक भी संदेह नहीं है। युधिष्ठिर! जिसका वध किया जाता है, वह प्राणी कहता है—आज मुझे वह खाता है। (मां स भक्षयते) तो मैं भी कभी उसे खाऊँगा। (भक्षयिष्ये तमप्यहम्)। यही 'मांस' शब्दका तात्पर्य है। इस जन्ममें जिस जीवकी हत्या की जाती है, वह दूसरे जन्ममें अपने पहले जन्मके हत्यारेको मारता है।'

जाताश्चाप्यवशास्तत्र भिद्यमानाः पुनः पुनः।
हन्यमानाश्च दृश्यन्ते विवशा मांसगृद्धिनः॥
कुम्भीपाके च पच्यन्ते तां तां योनिमुपागताः।
आक्रम्य मार्यमाणाश्च त्रस्यन्त्यन्ये पुनः पुनः॥

'मांसभक्षी जीव कहीं जन्म लेनेपर भी परवश होते हैं,

वे बारबार शस्त्रोंसे काटे जाते और पकाये जाते हैं, उनकी यह दुर्गति प्रत्यक्ष देखी जाती है। (आज जो मांसभक्षियोंके द्वारा काटे और पकाये जाते हैं, ये सभी प्राणी पूर्वजन्ममें मांसभक्षी मनुष्य ही थे।) फिर अपने पापोंके कारण कुम्भीपाक नरकमें डाले जाते और भिन्न-भिन्न योनियोंमें जन्म लेकर गला घोंट-घोंटकर मारे जाते हैं।'

मनुष्य जैसा भोजन करता है, वैसा ही उसका मन तथा स्वभाव बन जाता है। जिन पशु-पक्षियोंका मांस वह खाता है, उन्हींके-से गुण, आचरण तथा स्वभाववाला वह बनता चला जाता है। उसकी आकृति भी क्रमशः उसी प्रकारकी बनने लगती है। वह इसी जीवनमें मनुष्य-स्वभावसे गिरकर पशुस्वभावापन्न, निर्दय, मूढ और उच्छृङ्खल बन जाता है और मरनेके बाद उसी भावनाके अनुसार तथा अपने दुष्कर्मोंका बदला भोगनेके लिये उन्हीं प्राणियोंके शरीर प्राप्तकर अत्यन्त दुःख भोगता है। भीष्मपितामहने कहा है—

> येन येन शरीरेण यद्यद् यत् कर्म करोति यः।
> तेन तेन शरीरेण तत् तत् फलमश्नुते॥
>
> (महाभारत-अनुशासनपर्व)

प्राणी जिस-जिस शरीरसे जो-जो कर्म करता है, वह उस-उस शरीरसे वैसा ही फल पाता है। मनु महाराजने भी कहा है—

> योऽहिंसकानि भूतानि हिनस्त्यात्मसुखेच्छया।
> स जीवंश्च मृतश्चैव न क्वचित् सुखमेधते॥
>
> (५।४५)

जो निरपराध प्राणियोंको अपने सुखकी इच्छासे मारता है, वह जीवित अवस्थामें और मरनेके बाद भी सुख नहीं पाता।

इस प्रकार मांसभक्षी हिंसापरायण लोग निश्चित ही दुःख, नरक तथा नीच गतिको प्राप्त होकर बारबार महान् क्लेश भोगते रहते हैं।

मांसभक्षणसे रोगोत्पत्ति तथा स्वास्थ्यनाश

जिन जानवरोंका मांस मनुष्य खाता है, उनके शरीरके रोगके परमाणु उस मनुष्यमें आ जाते हैं और वह कठिन-से-कठिन रोगोंका शिकार हो जाता है—

१. उल्लामा जलालुद्दीन सेवती लिखते हैं, 'गायका गोश्त मर्ज और उसका दूध-मक्खन शिफा है।'

२. हजरत आयशा फर्माती हैं, 'गायका दूध दवा, उसका मक्खन शिफा और उसका गोश्त सरासर मर्ज है।'

३. उल्लामा तिवदी जहीरने रवायत की है, 'गायका गोश्त बीमारी, उसका मक्खन दवा, उसका दूध शिफा है।'

हजरत इब्ने मसऊद सहावी अपनी किताब 'मस्तदरक' में गायके गोश्तके सम्बन्धमें स्वयं पैगंबर साहेबकी कही हुई बातको अक्षरशः इस प्रकार उद्धृत करते हैं—

'अलैकुम् व अल्बानुल् बकरे व अस्मानिहा व इय्याकुम् व लुहूमुहा। फइन्नहा शिफाउन् व समिनुहा दवाउन् व लहमुहा द आउन॥'

अलमुस्तहर हकीम इब्राहीम जयपुरीने दिल्लीमें एक नोटिस बँटवाया था, जिसका आशय इस प्रकार है—

'अज रूए तिब्ब गायका गोश्त जुकाम, कोढ़, दिमागी अमराज, सौदा जहालत, गजपलिया वगैरह बीमारियाँ पैदा करता है। औरतोंका हैज अजवक्त बंद कर तौलीद औलाद मुनक्किता कर देता है और हैज बंद हो जानेपर हजारहाँ मोहलक बीमारियाँ मुहलिक हो जाती है और ये बीमारियाँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी चली जाती हैं। इसलिये गायका गोश्त खाना छोड़कर गायका दूध पीना चाहिये।'

विशेषज्ञोंद्वारा किये गये अनेक प्रयोगोंसे भी यह सिद्ध हो चुका है कि मांस-भक्षण सर्वथा अनावश्यक तथा हानिकर है। कुछ प्रयोग निम्नाङ्कित हैं—

(१)

टोकियोके प्रोफेसर बेल्जने जापानके कुछ निरामिषभोजियोंपर कुछ प्रयोग किये। पहले उन्होंने उनकी श्रमसहिष्णुताके कुछ कार्योंको जाँचकर लिख लिया, फिर उन्होंने उनको मांस देना आरम्भ किया। उन लोगोंने माँस-भक्षणको एक शौककी चीज समझकर बड़े चावसे खाया; क्योंकि उच्च वर्गोंके लोग मांस खाते थे। किंतु तीन दिनोंके बाद वे बेल्ज साहबके पास आये और प्रार्थना करने लगे कि 'हमें मांस देना बंद कर दिया जाय, क्योंकि मांस खानेसे वे थकावटका अनुभव करते थे और पहलेकी भाँति कार्य नहीं कर सकते थे।'

(२)

एक दूसरा निर्णयात्मक प्रयोग इंग्लैंडमें हुआ था—

''सन् १९०८में ६ मासतक 'लंदन वेजिटेरियन एसोसियेशन'—लंदनके निरामिषभोजी संघकी सेक्रेटरी कुमारी एफ. ई. निकल्सनने १०,००० बच्चोंको निरामिष भोजन कराया तथा 'लंदन काउंटी कौंसिल' द्वारा एक दूसरे

भोजनालयमें उतने ही बच्चोंको मांससहित भोजन कराया गया। छः मासके अन्तमें दोनों दलोंके बच्चोंकी परीक्षा डाक्टरोंद्वारा की गयी, जिससे यह सिद्ध हुआ कि मांसभोजी बच्चोंकी अपेक्षा निरामिषभोजी बच्चोंका स्वास्थ्य अधिक अच्छा, वजन अधिक, पुट्ठे अधिक सुदृढ़ तथा चमड़ा अधिक साफ था। अब 'लंदन काउंटी कौंसिल' की प्रार्थनापर और उसीकी देख-रेखमें 'लंदन वेजिटेरियन एसोसियेशन' द्वारा लंदनके गरीब-से-गरीब निवासियोंको हजारोंकी संख्यामें निरामिष भोजन दिया जाता है।''

(३)

अमेरिकामें प्रोफेसर शिटेंडन पी-एच्.डी., एस्.-सी. डी., एल्-डी. डी. द्वारा किया हुआ प्रयोग—जिसका वर्णन नीचे दिया जाता है—बड़ा ही मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद है।

'अमेरिकन सिपाहियोंके साधारण दैनिक आहारमें ७५ औंस ठोस भोजन रहता है, जिसमें २२ औंस कसाइयोंके यहाँका मांस रहता है। इन सिपाहियों तथा व्यायाम करनेवालोंके भी भोजनका परिमाण एक प्रकारसे सारा-का-सारा मांस २१ औंस तथा ठोस वस्तुओंका कुछ अंश निकालकर ५१ औंस कर दिया गया। नौ महीनोंतक उन्हें इस भोजनपर रक्खा गया, जिसका यह परिणाम हुआ कि यद्यपि भोजनमें परिवर्तन करनेके पहले उनके शरीरका पूर्ण विकास हो चुका था और देखनेमें ऐसा मालूम होता था कि अब इससे अधिक शक्ति इनमें न आयेगी। फिर भी नौ महीनेके अन्तमें उनमें पहलेकी अपेक्षा कहीं अधिक शक्ति आ गयी और उनका स्वास्थ्य भी पहलेसे कहीं अच्छा हो गया। यन्त्रद्वारा ठीक-ठीक नापनेसे पता चला कि उनकी शक्तिमें लगभग ५० प्रतिशत वृद्धि हुई तथा वे अधिक आसानीसे अधिक ठोस काम करने लगे, उनमें अधिक प्रसन्नता आ गयी तथा उनके स्वास्थ्यमें भी उन्नति हुई और जब उनको इस बातकी स्वतन्त्रता दे दी गयी थी कि चाहें तो अपना पिछला भोजन फिर शुरू कर सकते हैं, तब भी उनमेंसे किसीने ऐसा करना स्वीकार नहीं किया।'

अत्यधिक मात्रामें मांस खानेके कारण एक बार बम्बईमें रहनेवाले कुछ अंग्रेजोंका क्या हाल हुआ था, यह बात इतिहासके निम्नलिखित पंक्तियोंसे ज्ञात होती है—

'समुद्री हवा तथा अक्सर होनेवाली वर्षाके कारण मौसिम ठंडी रहती थी, गरमी बढ़ नहीं पाती थी। इसके पूर्व यहाँकी वायु बड़ी दूषित और खतरनाक थी, किंतु जबसे अंग्रेजोंने नगर तथा आस-पासके दलदलोंको सुखा दिया, तबसे वायु शुद्ध हो गयी थी। इतनेपर भी बम्बईमें कई यूरोपियन अचानक मर गये। उनमेंसे अधिकांश नये आये हुए थे, जिनके रहन-सहनका ढंग यहाँकी जलवायुके अनुकूल न था, जिसके कारण वे जल्दी चल बसे। वे गाय तथा सूअरका मांस अधिक मात्रामें खाते थे, जो भारतीय कानूनके अनुसार निषिद्ध था और घोर ग्रीष्म ऋतुमें भी वे पुर्तगालकी गरम शराब पीते थे।'

(देखिये जे. टी. ह्वीलरका 'मुसलमानी शासनकालमें भारतवर्षका इतिहास')

डाक्टर हेग अपनी पुस्तक 'डायट ऐंड फूड'—'खाद्य पदार्थ और भोजन'के १२९वें पृष्ठपर लिखते हैं—

'मांस-भक्षण सुस्ती लाता है, क्योंकि इसके कारण मस्तिष्क, मांस-पेशियों, हड्डियों तथा सारे शरीरमें रक्तका प्रवाह मन्द तथा न्यून हो जाता है। रक्त-प्रवाहकी यह मन्दता और न्यूनता यदि जारी रहे तो परिणाममें स्वार्थ-परायणता, लोलुपता, भीरुता, अधःपतन, ह्रास और अन्तमें विनाश निश्चित है। इससे धनके प्रति आसक्ति उत्पन्न होती है, जिससे विलासितापूर्ण आलस्यका जीवन प्राप्त हो सके। क्या किसी स्वस्थ राष्ट्रके अङ्गभूत व्यक्तिका यही आदर्श है कि वह इस प्रकारका आलस्यमय जीवन प्राप्त करके तृप्ति और जीवनके प्रति अरुचिका अनुभव करे—इसका निर्णय स्वयं राष्ट्र ही करे।'

प्रसिद्ध डाक्टरोंने बतलाया है कि 'एपेंडिक्स (आन्त्र-पुच्छ-व्रण) का रोग मांसभक्षियोंको ही अधिक होता है। मांसका टुकड़ा आँतमें जाकर अटक जाता है और फिर वह सड़कर वहाँ मवाद पैदा कर देता है।'

इंग्लैंडके एक प्रसिद्ध डाक्टरने कुछ समय पूर्व लिखा था कि 'इंग्लैंडमें कैंसरके रोगी दिनों-दिन बढ़ते जा रहे हैं। अकेले इंग्लैंडमें इस भयानक रोगसे तीस हजार मनुष्य प्रतिवर्ष मरते हैं, यह रोग मांसभक्षणसे होता है। यदि मांसाहार इसी तेजीसे बढ़ता रहा तो इस बातका भय है कि भविष्यकी संतानमें ढाई करोड़ मनुष्य इस रोगके शिकार होंगे।'

मांसाहारजनित प्राणिवध-पापसे आयु तो नष्ट होती ही है—

यस्माद् ग्रसति चैवायुर्हिंसकानां महाद्युते ।
तस्माद् विवर्जयेन्मांसं य इच्छेद् भूतिमात्मनः ॥

(महाभारत-अनुशासन०)

हिंसाजनित पाप हिंसकोंकी आयुको नष्ट कर देता है। अतएव अपना भला चाहनेवाले लोगोंको मांसका व्यवहार सर्वथा छोड़ देना चाहिये।

'कैटिल प्रॉब्लेम इन इण्डिया' नामक पुस्तकमें बताया गया है—

१—मांस-भक्षण अनावश्यक, अस्वाभाविक तथा अहितकर है ।

२—यह अन्नसे कम पुष्टिकर है ।

३—निरामिष आहारकी अपेक्षा यह मनुष्यमें सहिष्णुता, शक्ति, स्फूर्ति तथा सामर्थ्य बहुत ही कम उत्पन्न करता है।

४—दाँतोंकी सफेदीपर इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

५—यह आयुको घटानेवाला है।

६—यह आलस्य, भारीपन तथा प्रातःकाल शारीरिक श्रममें अरुचि उत्पन्न करता है।

७—यह सौमें निन्यानबे मनुष्योंका सफाया कर देता है।

८—यह क्षुद्र 'अहम्'के प्रति प्रेमका विस्तार करके जगत्के प्रति हमारे विचारोंको संकीर्ण बना देता है।

९—यह राष्ट्रकी स्वार्थपरायणता, लोलुपता, अवनति, ह्रास तथा विनाशकी जड़ है।

१०—इसके कारण शराब पीनेकी बुरी और विनाशकारी आदतको प्रोत्साहन मिलता है, जिससे देशके लोगोंका जीवन अनावश्यक रूपसे खर्चीला हो जाता है और इस प्रकार अन्तमें यह देशकी सत्ताको संकटमें डाल देता है; क्योंकि श्रीडाक्टर हेडके शब्दोंमें कम-खर्चीले जीवनका प्रश्न ही राष्ट्र तथा प्रत्येक व्यक्तिके अस्तित्वका निर्णय करता है।

(Cattle-Problem in India)

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन तथा उद्धरणोंसे यह सिद्ध हो जाता है कि अहिंसाका तात्पर्य केवल मानवकी हिंसा न करना ही नहीं है। किसी भी प्रकारसे तथा किसी भी हेतुसे कभी भी किसी भी प्राणीकी हिंसा न करना ही 'अहिंसा' है और यह अहिंसा ही मनुष्यके लिये परम आदरणीय, सबके आचरणके योग्य, सर्वसुखकारी तथा कल्याणकारी परम धर्म है।

मांस-भक्षण सब प्रकारसे दुःख तथा भय उत्पन्न करनेवाला, रोग उत्पन्न करनेवाला, महान् संकट पैदा करनेवाला, नरकोंमें ले जानेवाला तथा बुरी-से-बुरी योनियोंमें भटकाकर अनन्त दुःखोंका भोग करानेवाला महापाप है। अतएव सर्वथा त्याज्य है।

इसलिये मनुष्यको चाहिये कि वह प्राणिहिंसाके महापापसे बचे और मांस-भक्षणका सर्वथा परित्याग कर दे। दूसरे लोगोंको भी मांस-भक्षण तथा जीव-हत्याके दोष बतलाकर उन्हें मांस-भक्षणसे बचावे। यह परम सेवा है तथा भगवान्‌को प्रसन्न करनेका अमोघ साधन है।

महाभारतमें कहा है—

अनिष्टं सर्वभूतानां मरणं नाम भारत ।
मृत्युकाले हि भूतानां सद्यो जायेत वेपथुः ॥

(अनुशासनपर्व)

न हि प्राणात् प्रियतरं लोके किञ्चन विद्यते ।
तस्माद् दयां नरः कुर्याद् यथात्मनि तथा परे ॥

(अनुशासनपर्व)

अभयं सर्वभूतेभ्यो यो ददाति दयापरः ।
अभयं तस्य भूतानि ददतीत्यनुशुश्रुम ॥

(अनुशासनपर्व)

लोके यः सर्वभूतेभ्यो ददात्यभयदक्षिणाम् ।
स सर्वयज्ञैरीजानः प्राप्नोत्यभयदक्षिणाम् ।
न भूतानामहिंसाया ज्यायान् धर्मोऽस्ति कश्चन ॥

(शान्तिपर्व),

भारत ! सभी जीवोंके लिये मृत्यु अनिष्ट है अर्थात् कोई भी प्राणी मृत्यु नहीं चाहता, मृत्युके समय प्राणी काँप उठते हैं।

इस संसारमें प्राणोंके समान अति प्रिय वस्तु और कुछ भी नहीं है। अतः मनुष्य जैसे अपने ऊपर दया करता है वैसे ही दूसरेपर भी करे।

जो मनुष्य दयापरायण होकर सब प्राणियोंको अभयदान देता है, सब प्राणी उसको अभयदान देते हैं।

इस संसारमें जो मनुष्य सब प्राणियोंको अभयदान देता है, वह समस्त यज्ञोंका अनुष्ठान कर चुकता है। उसको सबसे अभय प्राप्त होता है। अतएव प्राणिमात्रकी हिंसा न करनेसे बढ़कर दूसरा कोई धर्म ही नहीं है।

मांसाहारपर वैज्ञानिक दृष्टिसे विचार

(लेखक—श्रीचन्द्रदेवजी मिश्र 'चन्द्र')

'जैसा आहार होता है, वैसा ही मन होता है। जो मनुष्य अत्याहारी है, जो आहारमें कुछ विवेक या मर्यादा ही नहीं रखता, वह अपने मानस विकारोंका गुलाम है। जो स्वादको नहीं जीत सकता, वह कभी इन्द्रियविजयी नहीं हो सकता। शरीर आहारके लिये नहीं बना है, आहार शरीरके लिये बना है। शरीर अपने-आपको पहचाननेके लिये बना है। अपने-आपको पहचानना, अर्थात् ईश्वरको पहचानना। इस पहचान (आत्मपरिचय) को जिसने अपना परम विषय बनाया है, वह विकारवश नहीं होगा।'

महात्मा गाँधीजीकी उपर्युक्त पंक्तियोंद्वारा हमें सचमुच उन बातोंका ज्ञान एवं आभास होता है, जो मनन करने योग्य हैं। हम जानते हैं आहारसे शरीरका निर्माण होता है। हम यह जोरसे कह सकते हैं कि हमारे शरीरकी धमनियोंमें जो रक्त संचारित होता है, हमारे अङ्गोंकी मांसपेशियोंका निर्माण जिसके द्वारा होता है, वह केवल आहार है। शरीरमें आत्मा-का निवास है, जो परमात्माका अंश है। हमारे शरीरका प्रभाव हमारी आत्मापर अवश्य पड़ता है, यह चिरन्तन सत्य है और उसी आत्माके द्वारा हमें लौकिक एवं अलौकिक मार्गोंकी ओर अग्रसर होना पड़ता है। कहनेका तात्पर्य यह है, यदि हमारा आहार सब प्रकारके विकारोंसे पूर्णरूपेण दूर न हुआ तो उसका प्रभाव हमारी आत्मापर पड़ता है और हमारी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, हमें परम-पिताका ध्यान ही नहीं रहता। धार्मिक दृष्टिसे हम जानते हैं कि सत्त्व, रज एवं तम—तीन गुण हैं तथा साथ-ही-साथ सात्त्विक, तामस एवं राजस भोजन भी बताये गये हैं तथा यह भी दिखलाया गया है कि उक्त प्रकारके भोजन करनेसे हममें उक्त प्रकारके गुणोंका प्रादुर्भाव होता है। सचमुच यदि कोई राक्षसी भोजन करना आरम्भ कर दे तो उसकी मानवीय प्रवृत्ति लुप्तप्राय हो जायगी तथा उसमें पाशविक एवं राक्षसी प्रवृत्तियोंका उद्भव होगा।

खैर, हम यहाँ धार्मिक दृष्टिसे त्याज्य पदार्थोंपर विचार नहीं करते। यह वैज्ञानिक युग है और हम इसपर वैज्ञानिक दृष्टिसे ही विचार करेंगे।

संसारके अच्छे-से-अच्छे वैज्ञानिकोंका मत है कि मनुष्य-को मांसाहारी न होकर शाकाहारी होना चाहिये। इंग्लैंडके प्रमुख कवि एवं वैज्ञानिक शेलीने अपने भावोंको कवितामें बहुत ही सुन्दरतासे व्यक्त किया है, जो दर्शनीय एवं मननीय है। उन्होंने 'क्वीन मैब' के एक छन्दमें जो कुछ कहा है, उसका भावार्थ इस प्रकार है—

'मांसाहारी मनुष्यको मेमनेका चेहरा स्पष्ट प्रतीत होता है, जबकि वह उसके मांसको त्याज्य समझता है। वह उसके बर्बाद एवं परिपक्व मांसको खाता है। वह प्रकृतिके कानून-को तोड़ता है। उसके मस्तिष्क और शरीरभरमें बुराइयों, भ्रष्टाचारों, घृणा, लज्जा, आत्मग्लानि, पीड़ा, दुःख आदिका विचित्र अनुभव होता है। वह उस भोजनके साथ दुःख, मृत्यु, रोग और अपराधके कीड़ोंको साथ लेता है।'*

हमें यह जानकर आश्चर्य होता है कि 'शेली' अपनी बीस वर्षकी आयुसे पहले ही शाकाहारी हो गया था। यही नहीं, एक दूसरे वैज्ञानिक प्रो० 'आरनल्ड हूट' (Arnold Eheret) का कथन भी सुन्दर है। वे अपने 'म्यूकसलेस डाइट' (Mucusless Diet) नामक पुस्तकमें लिखते हैं—

'संसारके पशुओंमें भी मांस खानेका विशेष महत्त्व नहीं है। प्रकृतिके नियमके अनुसार केवल शाकाहार ही उत्तम एवं उपादेय भोजन है। एक प्रकारका ताजा फल, जो किसी विशेष मौसममें उत्पन्न होता है, वह उसी विशेष समयके लिये भोज्य है, और यदि आप उसको खायें तो आप और वस्तुओंसे उसे उत्तम समझेंगे तथा इस प्रकार आपको

---

* These lines occur in the book 'On the vegetable system of Diet' by "Hugh Anson Fausset". Shelley became a vegetarian before he was twenty and the earliest expression of his being a vegetarian occurs in a passage in 'Queen Mab' in which—

Man no longer slays the lamb, who looks him in the face,
And horribly devours his mangled flesh, which, still avenging
Nature's broken law kindled all putrid humours in his frame,
All evil passions, and all vain belief,
Hatred, despair, and loathing in his mind,
The germs of misery, death, disease and crime......

शाकाहारका पूर्ण आनन्द तबतक नहीं प्राप्त होगा, जबतक आप अपने शरीरको मांसादिसे बिल्कुल शुद्ध न कर लेंगे।'*

ठीक ही है, हमारा शरीर, यदि देखा जाय तो उन्हीं पदार्थोंके द्वारा निमत है जो शाकाहारद्वारा हमें पूर्णरूपेण प्राप्त होते हैं। शरीरके रक्तमें, शरीरके मांसमें बाहरके रक्त एवं मांसको मिलाना जरा भी बुद्धिमानी नहीं है। यदि हमारे शरीरके प्रत्येक अवयवका सूक्ष्म निरीक्षण किया जाय तो हमें विदित होगा कि इसकी रचना ठीक एक शाकाहारी जीवकी तरहसे है, न कि एक मांसाहारीकी तरह। उदाहरणके लिये आप दाँतको ले सकते हैं। यदि मनुष्यके दाँतका निरीक्षण किया जाय तो वह गाय (जो कि एक शाकाहारी पशु है।) से अधिक मिलता-जुलता है न कि एक मांसाहारी कुत्तेसे।

मनुष्यमें कर्तन-दन्त दो होते हैं। ये आगेकी ओर होते हैं और जैसा कि इनका नाम है ये वस्तुओंके काटनेके काममें आते हैं। इसके उपरान्त श्वदन्त आता है, जिसका मनुष्यमें कोई विशेष महत्त्व नहीं होता, अतएव ये अधिक विकसित नहीं होते हैं। इसके पश्चात् अग्रचर्वणक एवं चर्वणक दन्तोंकी पंक्तियाँ होती हैं। इस प्रकार मनुष्यके दन्त-विन्यासद्वारा यह पता चलता है कि उसकी रचना शाकाहारके लिये है। सूक्ष्ममें हम उसे इस प्रकार लिख सकते हैं—

$$क\ \frac{२}{२}\ श्व\ \frac{१}{१}\ अ\ \frac{२}{२}\ च\ \frac{३}{३}=३२$$

यदि हम कुत्तेके दन्त-विन्यासको लें तो हमें पता चलेगा कि उसमें मनुष्यके दाँतोंसे बड़ा अन्तर है। कुत्ता एक मांसाहारी जन्तु है, अतः इसके कर्तन-दन्त छोटे-छोटे होते हैं। प्रत्येक जबड़ेमें इनकी संख्या छः होती है। कर्तन-दन्तोंके इधर-उधर प्रत्येक जबड़ेमें एक श्वदन्त होता है। ये लम्बे नुकीले और मजबूत होते हैं। दोनों जबड़ोंमें प्रत्येक ओर चार-चार अग्रचर्वणक होते हैं, किंतु चर्वणकोंकी संख्या बराबर नहीं रहती। ऊपरी जबड़ेमें प्रत्येक ओर दो और निचले जबड़ेमें प्रत्येक ओर तीन चर्वणक-दन्त होते हैं। ऊपरी जबड़ेका सबसे पीछेवाला अग्रचर्वणक और नीचे जबड़ेका प्रथम चर्वणक-दन्त मांसडाढ़, या कार्नेसीयल दंत (Carnassial) कहलाते हैं। ये मांसके टुकड़े करनेमें अत्यन्त उपयोगी होते हैं। इनका दन्त-सूत्र इस प्रकार है—

$$क\ \frac{३}{३}\ श्व\ \frac{१}{१}\ अ\ \frac{४}{४}\ च\ \frac{२}{३}=४२$$

हमें भगवान्‌ने जिस प्रकार संसारमें जन्म दिया है, ठीक उसी प्रकार पशुओंको भी ईश्वरने उत्पन्न किया है। यह कोई बुद्धिमानीकी बात नहीं कि हम उनकी हत्या करके उनके मांसको अपना आहार बनायें। हमारे लिये ईश्वरने वैसे ही शाकादि इतनी प्रचुरमात्रामें उत्पन्न कर दिये हैं, जिनसे हमारी सारी आवश्यकताएँ पूरी हो सकती हैं।

हम इन बाहरकी वस्तुओंको खाकर अपनी शक्तिको बढ़ानेका प्रयास करते हैं, परंतु फल उसका उल्टा होता है। हमारी शक्ति उक्त वस्तुओंको पचानेमें समाप्त हो जाती है और ऊपरसे लाभ कुछ भी नहीं होता। कहावत बहुत प्रचलित है—'खाओ, पीओ और मौज करो' पर यदि उन मनुष्योंसे, जो फिर इस कहावतके अनुसार जीवन बनाते हैं, यदि पूछा जाय—'क्या भाई! आप इस प्रकारसे सुखी हैं ?' उनका उत्तर अवश्य 'ना' में होगा। सचमुच देखा जाय तो वे खाओ, पीओ, मौज करोके अतिरिक्त स्वयं भोजनके भोज्य बन रहे हैं। उनमें जो शक्ति उत्पन्न होती है, वह बेकारके विकृत पदार्थोंको पचानेमें व्यर्थ खर्च होती है।

आजका विज्ञान कहता है—स्वच्छताकी ओर ध्यान दो, परंतु वह यह नहीं देखता कि उसके समक्ष हो क्या रहा है। मांस, अण्डे, मछली आदिके भोजनमें कितनी स्वच्छता होती है, यह जाननेका वह प्रयास ही नहीं कर रहा है, अथवा जान-बूझकर भी सभ्यताकी ओटमें उसे एक ओर कर देना चाहता है। 'आरनल्ड हर्ट (Arnold Eheret) का कथन कि 'मांस'—आदि सब वस्तुएँ अपने अवयवोंमें विच्छेद होनेकी अवस्थामें होती हैं। ये विच्छिन्न होकर विष, यूरिया आदि शरीर और त्वचामें बिखेर देती हैं। चर्बी मांससे भी विकृत वस्तु है। कोई भी पशु चर्बी आदि नहीं खाता।*

---

* "In nature, such as exists in the animal kingdom, there are absolutely no mixtures at all. The ideal and most natural method of eating is the mono-diet, one kind of fresh fruit, when in season, should constitute a meal, and you will find yourself better nourished. This condition, of course, cannot take place until you have thoroughly cleansed your body of toxemic poisons, mucus, or call it foreign substance."

—*Prof. Arnold Eheret*

**Meats*—All are in decomposing state, producing cadaver poisons, uric acid in the body and mucus, fats are the worst. —*Arnold Eheret*

अण्डे मांससे भी अधिक हानिकर हैं। इसका कारण 'आरनल्ड हर्ट'ने यह बताया है कि उनमें केवल अधिक मात्रामें प्रोटीन ही नहीं रहता वरं उनमें एक प्रकारका पदार्थ पाया जाता है जो अत्यधिक चिपचिपा होता है और जिससे खानेके बाद कब्जियत हो जाती है। इस प्रकार यह आँतोंको बहुत ही हानि पहुँचाता है। यह हमारे लाभके अतिरिक्त मृत्युका कारण बन सकता है।*

इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य जो उक्त वस्तुओंको खाकर जीवनको सुखी बनाना चाहता है, वह उसका बिल्कुल भ्रम है; क्योंकि वह मनुष्यको लाभके बदले हानि अधिक पहुँचाता है।

संसारमें मांसादिके आहारके कारण बहुत-से रोगोंका सूत्रपात हुआ है। इन रोगोंको हम अपने-आप मोल लेते हैं। हम स्वस्थ बननेके लिये मांस खाते हैं, परंतु हमें प्राप्त होते हैं उससे रोग, जिनकी हम कल्पनातक नहीं करते। कुछ उदाहरण देनेसे पूर्व हमें पहचान लेना आवश्यक है कि इन रोगोंके कीटाणु अलग-अलग तथा अपनी विशेषता लिये हुए होते हैं। ये कीटाणु अपने जीवनक्रमको दो पोषिता (host) पर रहकर पूरा करते हैं। इन पोषिताओंमें एक पोषिता ऐसी होती है जिसकी ये कुछ भी हानि नहीं करते, परंतु साथ-ही-साथ प्रायः दूसरी पोषिताके लिये बड़े हानिप्रद होते हैं। अपने जीवनक्रममें ये एक पोषितासे दूसरी पोषितामें आया-जाया करते हैं।

उदाहरणके लिये हम यकृत-विद्धा (Liver fluke) नामक कीटाणुको ले सकते हैं। यह प्रौढ़ावस्थामें भेंड़, गाय, बैल, सूअर, बकरी तथा अन्य पशुओंमें मिलता है और उक्त पशुओंके मांसको मनुष्य खाता है तथा दैववश यह कीटाणु मनुष्यमें पहुँच गया तो यह पित्त-प्रणालियोंमें जाकर यकृताश्म (Pipey-liver) नामक रोग उत्पन्न करता है। इस रोगमें पित्त-प्रणालियोंकी पित्तियोंका कैल्सिफिकेशन (Calcification) हो जाता है और साथ-ही-साथ यकृतकी वृद्धि होती है। हमारे देशमें इस परजीवी कृमिके कारण कितनी आर्थिक हानि होती है, इसके आँकड़े यद्यपि प्राप्त नहीं हैं, फिर भी सहजमें अनुमान लगाया जा सकता है कि वह हानि असाधारण होती है।

आसाममें आँतोंमें आन्त्रविद्धिका (Fascioplosis buski) मिलता है। इसके कारण मनुष्यको एक नहीं वरं आमाशयिक शूल (Apigastric Pain), पाण्डु (Anaemia) आदि हो जाता है।

टीनिया सोलियम नामक (Tenia Solium) एक दूसरा कृमि भी है। यह शूकरमें पाया जाता है तथा इसी प्रकारका दूसरा कृमि टीनिया सेजिनेटा (Tenia Saginata) है जो चौपायोंमें—जैसे गाय, भैंस, बकरी आदिमें पाया जाता है और जब मनुष्य इनके मांसको खाता है, तब प्रायः ये कृमि मनुष्यकी आँतोंमें पहुँचकर बड़ी हानि पहुँचाते हैं एवं रोग उत्पन्न करते हैं।

पशुओंमें एक दूसरा कृमि भी मिलता है जिसे श्वकाञ्ची (Echinococcus granulosus) कहते हैं। यह मुख्यतः कुत्तोंकी आँतोंमें मिलता है और आकारमें बहुत छोटा होता है। संक्रामित कुत्तोंके द्वारा वैसे ही अथवा मांससे यदि मनुष्यमें पहुँच जाता है तो वह बहुत हानि पहुँचाता है। उपर्युक्त उदाहरणोंसे यह सिद्ध हो गया कि ये कृमि किस प्रकारसे किन पशुओंके मांसके साथ हमारे शरीरमें पहुँचकर विकार उत्पन्न करते हैं। लोगोंमें मांस आदिके अतिरिक्त घोंघा आदि खाना भी प्रचलित है, कुछ लोग चिड़िया आदि भी खाते हैं। बहुत प्रकारके कृमि घोंघा (snails) में रहकर और मनुष्यकी आँतोंमें पहुँचकर (जब वह उन्हें खाता है।) रोग उत्पन्न करते हैं। कबूतरमें रायलटिना और कुटगनिया (Raillietina and Cotugnia) नामक कृमि होते हैं। यदि कोई मनुष्य कबूतरका मांस खाता है तो असावधानीवश यदि एक भी कृमि आँतमें पहुँच जाता है (असावधानी क्या, पहुँच ही जाता है) तो वह औरोंको उत्पन्न कर हमें बड़ा कष्ट पहुँचा सकता है।

जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ कि ये कृमि हमारे देशमें ही नहीं, वरं सारे संसारमें फैले हुए हैं और ये अपने पोषिताके (मांस आदि) साथ मनुष्यके शरीरमें पहुँचकर कष्ट देते हैं। इनको संक्षेपमें हम निम्नलिखित सारणियोंद्वारा जान सकते हैं—

* *Eggs*—Eggs are even worse than meats, because not only have eggs too high protein qualities, but they contain a gluey property much worse than meat and are therefore very constipating, quite more so than meat.

—*Arnold Eheret*

क—

	वैज्ञानिक नाम	विकासकी अवस्थाएँ (जिनपर होती हैं)	देशोंके नाम	जिन्हें हानि पहुँचती है।
Intestinal flukes आमाशय कृमि	Fasciloposis buski फेसिलापिसस बक्सी	घोंघा (Snails) तथा पानीके पौधे	चीन, इण्डोचाइना, सुमात्रा, भारतवर्ष	मनुष्य (चीन) सूअर (फारमूसा)
	Hetrophyes हेट्रोफाइस	घोंघा (Snails) तथा मछलियाँ	मिश्र, चीन, जापान	मनुष्य, कुत्ता, बिल्ली (मिश्र)
Liver-fluke यकृत कृमि	Chlonorchis siriensis क्लोनोरेसिस सिरेनसिस	घोंघा (Snails) तथा मछलियाँ	चीन, जापान, कोरिया, फेंच इण्डोचाइना,	मनुष्य, कुत्ता, बिल्ली तथा मछली खानेवाले पशु
	Opisthorchis felineus ओपिसथोचिस फिलिनस	घोंघा तथा मछलियाँ	यूरोप, पनामा, फिलिपाइन	मनुष्य, कुत्ता, बिल्ली।
Lungs fluke फेफड़ेके कृमि	Paragoninius westermani पैरागोनिसस वेस्टरमैनी	घोंघा तथा क्रैब्स (Crabs) केकड़ा	(Japan); जापान फिलिपाइन, अमेरिका	मनुष्य, कुत्ता, बिल्ली।

ख—

वैज्ञानिक नाम	विकासकी अवस्थाएँ जिनपर विकास	देशोंके नाम	जिन्हें हानि पहुँचती है।
Liploybothrium-latum लिप्लीयोथरियलटम	मछलियाँ आदि	सारे संसारमें	मनुष्य, कुत्ता, बिल्ली, (क्षुप्रांग)
Echinococcus granulosus इकेनूकोकस ग्रेनुलोसस	यकृत, फेफड़े, मस्तिष्क मनुष्यके सूअर, भेड़ आदि	,,	कुत्ते तथा मनुष्य
Hymenolepisnema हिमनोलिपिसनमा	मनुष्य, चूहा आदि	,,	मनुष्य तथा चूहा
Tenia saginata टिनिया सजिनेटा	चौपायों, आदि	,,	मनुष्य
Tenia solium टिनिया सोलियम	सूअर आदि	,,	मनुष्य

उपर्युक्त सारिणीसे पता चलता है कि किस प्रकार भयानक एवं संक्रामक रोग दूसरे पशुओंके द्वारा मनुष्यमें फैलता है। आश्चर्यकी बात यह है कि जिस मांसको मनुष्य अपने सदुपयोगमें लाना चाहता है, जिससे लाभ उठानेका प्रयत्न करता है, वास्तवमें वह कितना त्याज्य और रोगोंको उत्पन्न करनेवाला है। काश, आजके वैज्ञानिक इस प्रगतिके युगपर इस छिपी हुई कालिमाको धोनेका प्रयत्न करते ! आप जिस वस्तुको खाते हैं अपने स्वास्थ्यके लिये, वही वस्तु आपके स्वास्थ्यको बनानेके स्थानपर उसे विकृत कर देती है।

इनसे मनुष्योंको ही नहीं, वरं पशुओंको भी हानि पहुँचती है। हमारे देशमें ही नहीं, वरं संसारके भिन्न-भिन्न देशोंमें इन रोगोंका आधिपत्य है। हमारा शरीर एक प्रकारका यन्त्र है, जो विद्युत्-यन्त्रके सदृश काम करता है। इसे विद्युत् एक ऐसी जगहसे मिलती है जिसे हम आदिशक्ति या परमात्मा कह सकते हैं। तात्पर्य यह है कि हमें अपने जीवनरूपी यन्त्रको चलानेके लिये भौतिक एवं आत्मिक शक्ति परमात्मासे मिलती है। यह शक्ति हमें निद्राके समय मिलती है। इसका अनुमान हम स्वयं दो दिन न सोकर लगा सकते हैं। सोनेके पश्चात् प्रातः उठनेपर मन एवं शरीरमें स्वच्छता एवं स्फूर्तिका अनुभव होता है। इस प्रकारसे प्राप्त हुई शक्ति हमें लौकिक एवं पारलौकिक कार्योंमें सहायता देती है।

हम समझते हैं कि हम खानेके ही कारण जी पाते हैं, यदि हम भोजन लेना बंद कर दें तो हमारी मृत्यु अवश्यम्भावी है। परंतु यदि हम इसपर ठीकसे विचार करें तो पता चलेगा कि खाना जीवनके लिये केवल उतना ही आवश्यक है जितना किसी विद्युत्-यन्त्रके कल-पुर्जोंमें लगानेके लिये तेल। यदि कोई मनुष्य मांसादिपर जीवननिर्वाह करेगा, तो उसके शरीरमें चर्बी आदिका प्राचुर्य अवश्य हो जायगा, परंतु उसकी क्रियाशीलता पूर्णरूपेण नष्ट हो जायगी और यदि कोई मनुष्य केवल अन्नादिपर निर्वाह करे तो उसकी शारीरिक प्रौढ़ताका संतुलन ठीक रहेगा, परंतु उसके शरीर आदिपर क्रान्तिका प्रसार न होगा और यदि कोई मनुष्य केवल फलाहारपर निर्वाह करे तो यह सत्य है, उसका शरीर क्षीण होता जायगा, परंतु साथ ही उसमें दुर्बलता और क्लान्ति भी आ जायगी।

हाँ तो, हमारे शरीरका विद्युत्-यन्त्र केवल उतना ही भोजन चाहता है जितनेमें उसके शरीरके अवयवोंको पुनः संगठित करनेकी आवश्यकता होती है। इसके प्रमाण हमारे प्राचीन महर्षि आदि हैं। जो समाधिस्थ होकर हजारों वर्ष जीवित रहते थे।

समाधि भी एक उच्च श्रेणीकी निद्रावस्था ही है। जब कोई मनुष्य समाधि लगाता है, तब वह उच्च निद्रावस्थामें पहुँच जाता है। तब वह अपने शरीरके विद्युत्-यन्त्रके द्वारा उस आदिशक्तिसे शक्ति (विद्युत्) लेता है जिसे हम ईश्वर कहते हैं। यही कारण है कि वह हजारों वर्षोंतक उसी प्रकार जीवित रहता है, जैसा कि वह पहले था। हाँ, एक बात अवश्य है उसका शरीर क्षीण हो जाता है, कारण कि उसके शारीरिक अवयवोंके ठीक करनेके लिये भोज्य पदार्थ नहीं मिलते। परंतु उसके शरीर और विशेषकर मुखमण्डलपर तेज, कान्ति विद्यमान रहती है। बल्कि और भी बढ़ जाती है। आजका मनुष्य इन बातोंको कल्पित और असम्भव समझता है, परंतु वह यह नहीं जानता है कि इसके पीछे कितना वैज्ञानिक रहस्य छिपा हुआ है।

अन्तमें मैं यही कहूँगा कि जिनमें जरा-सा विवेक और तर्कशक्ति है; जो जीवनको निरर्थक न समझ उसे किसी निमित्त समझते हैं (क्योंकि बिना कारणके कार्य हो ही नहीं सकता) वे मांसादि-भक्षणपर विचार करें और सोचें कि इससे क्या लाभ होता है और क्या हानि होती है। आजकल आये दिन हार्टफेलके समाचार मिलते हैं—आखिर ऐसा क्यों होता है। पहले ऐसे समाचार कदाचित् ही सुननेमें आते थे, परंतु अब आचार-विचार, खान-पान आदिका संसारमें कोई विचार ही नहीं रहा। यही कारण है कि हमारी शारीरिक और मानसिक शक्ति दिनोंदिन क्षीण और लुप्तप्राय होती जा रही है और हम पशुताके पुजारी बनते जा रहे हैं ! मेरी तो समझमें नहीं आ रहा है कि संसार सभ्यताकी ओर अग्रसर हो रहा है अथवा घोर असभ्यताकी ओर !

पर-दुखकी परवाह न कर जो मांस प्राणियोंका खाता। प्राणीवधके महापापसे निश्चय नरकोंमें जाता ॥
फिर अति नीच आसुरी पशुपक्षीके चोलेको पाता। दुख पाता, रोता, फिर पूर्व वैरवश वह मारा जाता ॥

प्राणिहिंसाकी विशाल योजना

'अरे मरणधर्मा मनुष्यो ! अपनी कलङ्कित तश्तरियोंके लिये प्राणियोंके शरीरोंका वध करना छोड़ो; क्योंकि जो मनुष्य एक भोले-भाले बछड़ेकी गर्दनपर छुरी चलाता है तथा निष्ठुर होकर उसका बँबाना सुनता है, अथवा जो बच्चोंकी भाँति मेंमियाते हुए बकरीके बच्चेका वध कर सकता है, या जो अपने ही हाथों खिलायी-पिलायी मुर्गीको खाकर अपनेको पुष्ट कर सकता है, वह अत्यन्त दुष्ट स्वभावको प्राप्त होता है और पशुओंकी भाँति मनुष्योंका रक्त बहानेके लिये भी अपने-आपको तैयार करता है।'

—पायथैगोरस

'किसी भी शास्त्रमें पशुओंका मारना नहीं लिखा है। हर-एक मनुष्य बुढ़ापा आनेके बाद या किसी बीमारीसे अपने-आप मर जाता है, उसको वध करनेकी जरूरत नहीं पड़ती। जब कि बड़े-बड़े वैज्ञानिक कीड़े-मकोड़ोंको जन्म नहीं दे सकते, तब उन्हें मार डालनेका उनका दावा कैसा? पहले राक्षस आदमियोंको खाते थे और अब आदमी पशुओंको खाते हैं, जो बड़े-से-बड़ा पाप है, जो होना नहीं चाहिये। मैं समस्त- हिंदुओं, मुसल्मानों और पारसियोंसे प्रार्थना करता हूँ कि वे ऐसे निरीह प्राणियोंका मारा जाना रोकें और विशेष करके गौओंकी रक्षा तो करनी ही चाहिये।'

—महामना मदनमोहन मालवीय

'मनुष्यके आहारके लिये जो आज प्राणियोंका वध होता है, उसे रोका जाय तो बड़ा अच्छा हो; परंतु इसके लिये एक ही मार्ग है और वह यह है कि मनुष्य-हृदयको जाग्रत् किया जाय। इसके सिवा दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। जहाँ भक्ष्य-भक्षक-भाव पक्का हो गया है, वहाँ दया-बुद्धिको उत्पन्न करना बहुत ही कठिन है। पशु-पक्षी, मत्स्य आदिका वध करनेके लिये जो पालन-पोषण किया जाता है, वह शिकारकी अपेक्षा भी अधिक निन्दनीय है। जिनका पालन करना उन्हींका वध करना; जिन्हें खाना देना उन्हींको खा डालना—इसमें उन जीवोंकी हिंसा तो होती ही है, परंतु उससे भी अधिक भयानक मनुष्य-हृदयकी हिंसा हो जाती है।'

—श्रीकालेलकर

बड़े ही खेदकी बात है कि ऋषि-महर्षियोंकी इस पुण्य-भूमिमें, भगवान् बुद्ध और भगवान् महावीरकी जन्मभूमिमें, गाँधीजीकी पूज्य पितृभूमिमें आज हिंसाका और मांस-भक्षणका प्रचार-प्रसार भयानक रूपसे बढ़ रहा है। जिस देशमें पिछली शताब्दियोंतक हिंसासे बड़ी घृणा थी, उसी पवित्र देशका घर-घर आज कसाईखाना बनने जा रहा है!

फाहियान—जिन्होंने ईसवी सन् ३९९ से ४१४ तक भारतमें भ्रमण किया था—लिखते हैं—

'चाण्डालोंके अतिरिक्त कोई भी किसी जीवित प्राणीका वध नहीं करता था, न मादक पेय पीता था, न जीवित पशुओंका व्यापार करता था। कसाईखाने और मदिराकी दूकानें नहीं थीं।'

अभी सन् १६७८–१६८१ में डाक्टर जान फ्रायर आये थे, वे अपना अनुभव बतलाते हैं—

'हिंदूलोग कन्द-मूल, साग, पत्ती, चावल तथा सब तरहके फलोंपर ही निर्वाह करते हैं, वे किसी भी जीवको नहीं खाते और न अंडे-जैसी कोई वस्तु खाते हैं, जिससे जीव उत्पन्न होता है।'

मुसल्मानी जमानेमें कुछ हिंसा बढ़ी थी पर वह धार्मिक कुर्बानीके रूपमें थी। न किसीको मांस खानेके लिये प्रोत्साहित किया जाता था, न उसके मिथ्या गुणोंका प्रलोभन दिया जाता था। अंग्रेजी राज्यमें हिंसा और भी बढ़ गयी, अंग्रेजी फौजोंके लिये पशुहिंसा होने लगी। पर उस समय भी धर्म-प्राण सर्वसाधारण मांससे घृणा करते थे। पर आज तो सारी ही स्थिति भयानक हो रही है। अंडेकी बात ही नहीं, उसे तो लोग निरामिष बतानेतकका दुःसाहस करने लगे हैं, मुर्गी-बकरीका मांस भी बहुत लोग चावसे खाने लगे हैं। यह इस अहिंसा-प्रधान सांस्कृतिक देशका भयानक पतन है। मैं स्वयं जानता हूँ;—हमारे अहिंसाप्रधान वैष्णव और जैन-समाजमें भी ऐसे मांसाहारी लोग उत्पन्न हो गये हैं। यह कितना बड़ा दुर्भाग्य है।

सबसे अधिक दुःखकी बात तो यह है कि अहिंसाकी

भूरि-भूरि प्रशंसा करनेवाली हमारी सरकार आर्थिक लाभकी योजना बना-बनाकर प्राणिहिंसाका घोर प्रचार-प्रसार कर रही है और उसके विशेषज्ञ लोग कसाईकी तरह लोगोंको मांस खानेके लिये उसके गुण और लाभ बता-बताकर प्रोत्साहन दे रहे हैं !

कुछ वर्षों पूर्व भारतसरकारद्वारा निर्मित एक कमेटीने जनताके खानपानकी रुचिमें परिवर्तन करके उसे मांसभोजी बनानेकी सलाह दी थी। भारतसरकारने एक पत्रमें राज्य-सरकारोंको लिखा था कि 'मरी हुई गायोंके चमड़ेकी अपेक्षा मारी हुई गायोंके चमड़ेका मूल्य अधिक आता है, इसलिये गोवध सर्वथा बंद नहीं होना चाहिये।'

भोजनके लिये स्थान-स्थानपर मछली, मुर्गे, सूअर आदिके पालनेकी सरकारने बड़ी भारी योजना बनायी है। द्वितीय पञ्चवर्षीय योजनामें केवल मछलियोंके लिये ११,७७,५८,०००) रुपये रक्खे गये हैं। मुर्गी-सूअरके इससे अलग हैं। सरकारी स्तरपर इतने व्यापक तथा विशाल रूपमें प्राणि-संहार तथा मांस-प्रचारकी योजना भारतमें इससे पहले कभी नहीं बनी थी!

अभी हालमें भारतसरकारने मांसको प्रधान 'उद्योग' (Industry) बनाने और इसके लिये 'प्राणिहिंसाके साधन बढ़ाने तथा गोहत्या जारी रखनेके हेतुसे 'मांसबाजार रिपोर्ट' १९५५ प्रकाशित की है। उसकी सिफारिशोंका कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है। इसको पढ़नेसे पता लगेगा प्राणि-विनाश-वृद्धि तथा गोहत्या जारी रखनेका कितना महान् प्रयास सरकारी तौरपर हो रहा है—

Conclusion and Recommendations

Production

The annual value of meat along with edible offals produced in India is estimated to be over 100 crores of rupees. The importance of the industry should not, however, be judged merely from this figure. Meat is vitally important to the Indian population because their diet is deficient in first class proteins and these could easily be obtained from meat. Therefore, from economic, nutritional and public health points of view, the meat industry is of considerable importance to the country and deserves a lot more attention than it has received in the past.

There appears to be a considerable agitation, in a section of the population, for complete ban on slaughter of cattle in India. This survey, however, has indicated that such a ban on total slaughter is bound to have serious repercussions on the different branches of live-stock industry of the country. The problem requires to be viewed from a practical economic angle. The correct solution would then seem to be to preserve useful cattle at all costs and so to improve the animals' health and breed as to ensure for the country in the course of time to come all the milk it needs and all the efficient animals its agriculture requires and yet, leave an adequate surplus to yield good quality meat, hides, skins, and bones. *It is, therefore, recommended that an Expert Committee consisting of officials and nono-officials conversant with meat and allied livestock industries should be appointed to enquire into the possible effects of the total ban on the slaughter of cattle with particular reference to the following—*

(i) The direct economic loss, present and potential that may be caused to the country as a result of the ban on the quality, quantity and value of meat and its by-products such as hides, bones, guts, horns, hoofs, blood, etc.

(ii) The loss that is likely to accrue to the country by the increase in the number of uneconomic or unfit cattle in the course of the next few years and its effects on the existing livestock fodder supplies.

(iii) The effect of such a ban on the health and welfare of that section of the Indian population, particularly the economically backward part of it, who depend largely on this cheap source for the supply of animal protein in their diet.

(*From the Report on the Marketing of Meat in India, 1955, Page 166*)

'भारतमें मांस तथा तत्सम्बन्धी खाद्य पशु-अङ्गादिके वार्षिक मूल्यका अनुमान लगभग एक सौ करोड़ रुपयेसे अधिक है। व्यवसायका महत्त्व केवल इन्हीं आँकड़ोंसे नहीं मान लेना चाहिये। मांस भारतीयोंके लिये नितान्त अनिवार्य है; क्योंकि उनके भोजनमें प्रथम श्रेणीकी 'प्रोटीन'की कमी मिलती है जो कि मांसद्वारा सरलतासे पूरी की जा सकती है; अतः आर्थिक, पौष्टिक तथा जनताके स्वास्थ्यकी दृष्टिसे मांस-का व्यवसाय देशके लिये अत्यन्त आवश्यक है और इस दिशाकी ओर पहलेकी अपेक्षा अत्यधिक ध्यान देना चाहिये।

भारतमें गोहत्या सम्पूर्ण बंद करनेके लिये जनताके कुछ भागोंमें अधिक मात्रामें आन्दोलन है। इस अनुसंधानसे, स्वभावतः यह पता चलता है कि गोहत्या पूर्णतया बंद करने-से देशके विभिन्न पशु-धन-व्यवसायपर गहरा आघात लगना अनिवार्य है। अतः इस समस्याको व्यावहारिक और आर्थिक ढाँचेसे देखना चाहिये। अतएव सही हलकी दृष्टिसे लाभदायक गोधनकी सँभाल सर्वथा आवश्यक है। इसके साथ ही पशुओं तथा नस्लकी उन्नति की जाय ताकि देशके भविष्यकी दृष्टिसे दूध, खेती-बारीके लिये मजबूत, चुस्त पशु तथा मांस, हड्डियाँ, चमड़ा, खाल आदिके लिये प्रचुर मात्रामें पशु मिल सकें।

अतः यह सिफारिश की जाती है कि सरकारी और गैरसरकारी लोगोंकी जो मांस और गोधनके विषयमें पूरी जानकारी रखते हों, विशेषज्ञ-समिति बनायी जाय जो निम्न बातोंकी ओर ध्यान रखते हुए 'पूर्ण पशुवध बंद करनेसे क्या प्रभाव पड़ता है' इस विषयमें जाँच करें—

(१) गोवध बंद करनेपर मांसके परिणाम, मूल्य तथा तत्सम्बन्धी उपज खालें, हड्डियों, आँतों तथा भविष्यमें क्या-क्या हानि हो सकती है।

(२) आगेके कुछ वर्षोंमें अयोग्य, अपंग और वृद्ध गोवंशकी भारतमें संख्या-अभिवृद्धि होनेपर जो हानिकी सम्भावना हो सकती है तथा उस समय पशुओंके लिये चारा-सम्बन्धी रसदका अभाव।

(३) आर्थिक दृष्टिसे जिन लोगोंका स्तर नीचा है और भोजनमें प्रोटीनकी कमीको पशुओंके मांसद्वारा ही जो पूरा करके स्वस्थ तथा सुखी होते हैं, उनपर पूर्ण गोहत्या बंद होनेपर क्या प्रभाव होगा।

इसीके साथ नीचे वह पत्र प्रकाशित किया जा रहा है जो हमारी स्वास्थ्य-मन्त्रिणी श्रीराजकुमारी अमृतकौर महोदयाने राज्य-सरकारोंके मिनिस्टरोंको लिखा है और जिसमें पशुओंके विभिन्न अङ्गोंसे दवा बनानेके लिये कसाईखानोंकी उन्नति करने, नये ढंगके कसाईखाने खोलनेके लिये विचार करनेको कहा गया है—

Minister for Health India, New Delhi

Dear Minister,

The Pharmaceutical Enquiry Committee in paragraphs 97-99 of their recommendations have stressed the need for setting up modern slaughter houses in big cities for the proper collection and storage of internal organs and glands of animals which are used by the pharmaceutical industry. The recommendations of the Pharmaceutical Enquiry Committee have been carefully examined and it is considered that steps should be taken to modernize slaughter houses, especially in those big cities where animals are slaughtered in large numbers, and to provide adequate facilities for the collection and storage of internal organs and glands of animals which are used in the manufacture of biological products such as liver extract, insulin and other hormones. Such measures should result not only in the promotion of indigenous manufacture of essential glandular drugs but also in conserving foreign exchange by utilizing the indigenous sources of glands etc. which at present go waste. The State Government were accordingly

addressed (in my Ministry's letter No. F. 12-7/55-D, dated the 19th February, 1955), for taking up the programme of modernization, as set out in the Masani Committee's Report, in big cities such as, Bombay, Madras, Calcutta, Delhi, Kanpur and Hyderabad and for discussing this question at a conference with the representatives of the pharmaceutical industry, the Municipal authorities and the State Drug Standard Control Officer. I shall be grateful if you will kindly give your personal attention to this matter, so that necessary action is taken in your State on the lines indicated in my Ministry's letter referred to above.

Yours Sincerely,

Sd/Amrit Kaur.

प्रिय मन्त्री महोदय !

'फार्मेस्युटिकल इन्क्वायरी कमेटीने अपनी सिफारिशों नं० ९७-९९ में इस बातकी आवश्यकतापर जोर दिया है कि पशुओंकी गिल्टियों और आन्तरिक अङ्गोंको ठीक प्रकारसे इकट्ठा करने और उनको गोदाममें रखनेके लिये बड़े शहरोंमें नये ढंगके कसाईखाने बनाये जायँ, जिनका दवाई बनानेके उद्योगमें उपयोग किया जाता है। इस इन्क्वायरी कमेटीकी सिफारिशोंका बड़े ध्यानसे निरीक्षण किया गया है और यह समझा गया है कि उन बड़े शहरोंमें नये ढंगके कसाईखाने बनानेके लिये प्रबन्ध किया जाय। विशेष करके, जहाँ पशु बड़ी संख्यामें वध किये जाते हैं और पशुओंकी गिल्टियों और आन्तरिक अङ्गोंको इकट्ठा करने और उनको गोदाममें रखनेके लिये पूरी सुविधाएँ दी जायँ। और यह चीजें ऐसी दवाइयाँ बनानेके काम आती हैं, जैसे 'जिगरका सत' 'इनस्यूलीन' और दूसरे वैसे ही पदार्थ। ऐसे तरीकोंसे न केवल गिल्टियों-सम्बन्धी आवश्यक दवाइयाँ देशमें बनायी जायँ बल्कि इन गिल्टियों आदिको काममें लाकर धन भी प्राप्त किया जाय। जो अब वैसे ही बर्बाद हो जाती हैं। इसलिये राज्यसरकारोंको इस मंत्रालयकी चिट्ठी नं० १२-७ ५५ डी ता० १९ फरवरी १९५५ द्वारा यह लिखा गया है कि वह इस नये ढंगके कार्यक्रमको जैसा कि मसानी कमेटीकी रिपोर्टमें बताया गया है—बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर, हैदराबाद-जैसे बड़े शहरोंमें प्रारम्भ करें और फार्मास्युटिकल दवाई बनानेवाले, उद्योगके प्रतिनिधियों या म्युनिसिपल कर्मचारियों और स्टेट ड्रग स्टैंडर्ड कंट्रोल आफिसर, राज्यौषध-स्तर नियन्त्रण अधिकारीके साथ एक सम्मेलनमें इस प्रश्नपर विचार करें। मैं कृतज्ञ हूँगी यदि आप कृपा करके इस विषयकी ओर अपना व्यक्तिगत ध्यान देंगे, ताकि आपके प्रान्तमें मेरे मन्त्रालयकी उपर्युक्त चिट्ठीमें बताये हुए सुझावको लेकर आवश्यक कार्य किया जा सके।'

आपकी सच्चे दिलसे

अमृतकौर

और इसके अनुसार नये ढङ्गके कसाईखाने बनानेकी व्यवस्था भी आरम्भ हो गयी है। गत ता० १० अप्रैल १९५६ को लोकसभामें डॉ० रामारावके एक प्रश्नके उत्तरमें श्रीनित्यानन्द-जी कानूनगो व्यवसाय-उपमन्त्रीने यह माना कि 'दिल्ली और बम्बईकी सरकारें नये ढंगके कसाईखाने बनानेकी तजवीज कर रही हैं। पशुओंकी हड्डियोंके जोड़ और दूसरे अङ्ग, जो दवाई बनानेके काम आते हैं, उनको रखनेपर भी गौर कर रही हैं। इत्यादि—

उपर्युक्त कमेटीकी सिफारिश तथा श्रीराजकुमारी अमृतकौर-के पत्रसे पता लगता है कि खान-पान तथा दवाके लिये किस प्रकार भयानक प्राणि-हिंसा और गो-हत्याकी योजना चल रही है और यदि इसके अनुसार कार्य हुआ तो देश कसाइयोंका-सा देश ही बन जायगा। कहाँ तो महात्माजीके साथी श्रीकालेलकर महोदय-जैसे विद्वान्, पशु-पक्षी और मछलियोंको पाल-पोसकर उनके वध करनेको जीव-हिंसाके साथ-ही-साथ 'मनुष्य-हृदयकी हिंसा' बताते हैं (देखिये इस लेखके आरम्भमें दिया हुआ कालेलकरजीका उद्धरण) और कहाँ महात्मा गांधीजीके सिद्धान्तोंका अनुसरण करनेवाली सरकार विशाल क्षेत्रमें व्यापकरूपमें पशु-पक्षी और मछलियों-को पाल-पोसकर मारने तथा लोगोंके द्वारा खाये जानेकी सरकारी तौरपर योजना बना रही है। भगवान् सद्बुद्धि दें।

सरकारकी इन योजनाओंको पढ़-सुनकर लोगोंका हृदय काँप उठा है। दिल्लीकी अहिंसा-प्रचार-समितिने एक विराट सभामें जो प्रस्ताव स्वीकार किये हैं, उनमें दूसरा प्रस्ताव यह है—

प्रस्ताव नं० २ —

अहिंसा-प्रचार-समिति दिल्लीद्वारा आयोजित यह सभा राष्ट्रपति महोदय, प्रधान मन्त्री, खाद्य-मन्त्री तथा स्वास्थ्य-मन्त्री महोदयकी सेवामें नम्र-निवेदन करती है—

(१) भारतसरकारके कृषि-मन्त्रालयने 'मांस-बाजार-रिपोर्ट १९५५' द्वारा पशु-वध जारी रखने तथा बढ़ानेके जो सुझाव दिये हैं उन्हें कार्यरूपमें परिणत न किया जाय।

स्वास्थ्य-मन्त्रिणी श्रीमती राजकुमारी अमृतकौर तथा उनके मंत्रालयद्वारा फरवरी १९५५में राज्य-सरकारोंको पशुओं-के भिन्न-भिन्न अङ्गोंद्वारा ओषधि तैयार करनेके लिये जो प्रोत्साहन दिया गया है, उसपर अमल न हो।

(३) दिल्ली तथा बम्बईमें जो आधुनिक ढंगके कसाई-खाने खोलनेकी योजना बनायी जा रही है, वह सदैवके लिये रद्द कर दी जाय।

प्रत्येक धर्म, संस्कृति, देश, स्वास्थ्य, गोमाता तथा प्राणि-मात्रके हितैषी पुरुषका तथा संस्थाओंका यह पुनीत कर्तव्य है कि वे स्थान-स्थानपर सभाओंका आयोजन करके माननीय राष्ट्रपति, सम्मान्य सर्वश्री,प्रधान मन्त्री, खाद्य-मन्त्री और स्वास्थ्य-मन्त्री महोदयकी सेवामें हिंसा बढ़ानेवाली तथा गोहत्या जारी रखने-वाली इन योजनाओंको बंद करनेके लिये उपर्युक्त प्रकारके प्रस्ताव तथा प्रार्थना-पत्र भेजें, शिष्ट-मण्डल भेजें, समाचार-पत्रोंमें आन्दोलन करें और प्रबल लोकमत तैयार करके प्राणि-हिंसाको बंद करानेके कार्यमें सहायता कर देशको महान् पापसे बचावें तथा महान् पुण्य अर्जन करें।

साथ ही सब लोग अपने-अपने इष्टदेव भगवान्से प्रार्थना करें कि वे इन भूले हुए अधिकारियोंको सुबुद्धि दें, जिससे ये इस महान् विनाशकारी महापापसे बचें तथा देशको बचावें।

विज्ञान या कि अज्ञान ?

(प्रश्नकर्ता—श्रीरुद्र)

यद्यपि विज्ञानके आविष्कार मानवीय बुद्धिके चमत्कार-के द्योतक और गौरवास्पद हैं, तथापि जब ये बातें ध्यानमें आती हैं कि मनुष्यकी शक्तिके मुकाबले सैकड़ों-गुना अधिक उत्पादन करनेवाली मशीनोंके बावजूद अधिकांश मनुष्योंको पूरा भोजन-वस्त्र नहीं मिलता। "Science and humanity to walk hand in hand (विज्ञान और मानवता साथ-साथ चलें) जैसे मधुर रागोंके अलापे जानेपर भी महाविनाशक और विषाक्त अस्त्रोंके निर्माण तथा प्रयोगद्वारा निर्दोष जीवोंकी हत्याके साथ संसारको आधि-व्याधिसे पीड़ित करनेवाले कार्योंमें दुनियाँकी सम्पत्ति और विज्ञानकी शक्तिका दुरुपयोग करनेमें बुराई नजर नहीं आती तो स्वभावतः प्रश्न उठता है कि ऐसे कार्योंमें वैज्ञानिकता दीखती है कि अज्ञान ? यदि अज्ञानमूलक नहीं तो अतिवृष्टि, अनावृष्टि, वायुके तूफानी झंझावातों आदि प्रकृतिके साधारण प्रकोपोंका सामना करनेमें असमर्थ होते हुए भी अणुबमके प्रयोगसे अति ताप आदिके विकार क्यों पैदा किये जा रहे हैं ? एक ओर अनेकों लोगोंको जीवनकी नितान्त जरूरी चीजें भी प्राप्त न हो रही हों और दूसरी ओर अरबों-खरबों-की सम्पत्ति समुद्रोंमें डुबायी जा रही हो तथा संसारको भय-व्याधिपीड़ित किया जा रहा हो तो इसे विज्ञानके बजाय अज्ञान क्यों नहीं कहा जाय और ऐसे कार्योंको करनेवाले वैज्ञानिकों तथा उन्हें न रोक सकनेवाले आज-के विश्वनाटकके सूत्रधारोंको क्यों न रास्तेपर लानेका प्रेम तथा शान्तियुक्त प्रयत्न किया जाय ?

कामके पत्र

(१)

भगवान् नित्य साथ रहते हैं

सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपके पत्र प्राप्त हो गये। बड़ा सुन्दर भाव है। भगवान्‌की आपपर बड़ी कृपा है, इसमें कोई संदेह नहीं।

हमको भगवान् इन आँखोंसे चाहे न दिखायी दें पर यह निश्चय समझ लेना चाहिये कि हमारे पास वे सदा-सर्वदा रहते हैं। कभी भी हमको छोड़कर अलग नहीं होते। पर हमारा पूरा निश्चय न होनेसे हम भूले हुए हैं, इसीसे अशान्ति अनुभव करते हैं। हीरोंका हार अपने गलेमें ही है। वह कपड़ोंसे ढँका है। इस बातको भूल जानेसे मनुष्य उसे बाहर ढूँढ़ता है और न मिलनेपर दुखी होता है। जब याद आ गया, कपड़ा हटाकर देख लिया, कि हार मिल गया। इसी प्रकार भगवान् सदा-सर्वदा हमारे साथ हैं। हृदयमें विराजमान हैं। (केवल निर्गुण निराकार रूपसे ही नहीं, हमारे जाने-माने हुए दिव्य सगुण-साकाररूपमें भी।) विश्वास कीजिये 'वे सदा साथ रहते हैं।' इसके बाद निश्चय होगा कि 'रहते ही हैं।' अतएव उनकी इच्छा होगी तब 'दीखने भी लगेंगे।' यह उनकी इच्छापर छोड़ दीजिये। वे सदा साथ रहते हैं, यही क्या उनकी कम कृपा है। उनकी यदि स्वप्नमें भी झाँकी होती है तो यह बड़ा सौभाग्य है। यह उनकी महती कृपा है।

कदाचित् ऐसी बात न जँचे, यद्यपि है तो यह परम सत्य ही, तो उनके न मिलनेसे उनके वियोगमें—विरहमें जो उनका पल-पलमें स्मरण होता है, वह क्या कम सौभाग्य है? उसमें क्या उनकी कम कृपा है? वे नहीं चाहते तो न मिलें, न दर्शन दें, बड़े-से-बड़ा दुःख दें, पर वह दुःख यदि नित्य उनका मधुर-मधुर स्मरण कराता हो, तो क्या हमारी यह चाह नहीं होनी चाहिये कि उनके इस मधुर-मधुर-स्मरण-सुखका महान् आनन्द, महान् सौभाग्य प्रतिक्षण मिलता रहे, फिर वह चाहे वियोगजनित दुःखसे ही मिलता हो। वह दुःख वस्तुतः परमानन्दरूप है जो नित्य-निरन्तर प्राण-प्रियतम प्रभुकी स्मृति कराता है।

मनमें निश्चय कर लेना चाहिये कि 'भगवान् मेरे हैं और मैं भगवान्‌का हूँ।' जबतक शरीरमें 'अहंता' और शरीरके सम्बन्धी प्राणी-पदार्थोंमें 'ममता' रहती है, तबतक साधना आगे बढ़ती नहीं। दिन-रात प्राणी-पदार्थोंमें राग-द्वेष बना रहता है। इसलिये या तो शरीर, संसारको असत् समझकर अहंता और ममता मिटा दी जाय अथवा बहुत ही सरल, सरस दूसरी चीज यह है कि 'अहंता (मैं-)को भगवान्‌का दास बना दिया जाय'—अर्थात् मैं न तो शरीर हूँ, न और कुछ हूँ, न और किसीका हूँ। मैं तो एकमात्र उन्हींका दास हूँ। और सारी ममता—'सारे मेरेपनको भगवान्‌में लगा दिया जाय।' अर्थात् कोई भी प्राणी-पदार्थ मेरा नहीं। एकमात्र भगवान् ही मेरे हैं। भगवान्‌के चरणकमल ही मेरे हैं। 'मैं उनका ही और वे ही मेरे'—तब फिर अपने-आप ही सारी अशान्ति, सारे दुःख-दोष दूर हो जायँगे। उनका अनन्त सुखमय स्मरण आपका जीवन बन जायगा। इसमें भी पहले विश्वास करना होगा कि—'मैं उनका ही हूँ और वे ही मेरे हैं।' इसके बाद निश्चय होगा कि 'अवश्य ही हैं', फिर अनुभूति होगी और यह अनुभव हो जायगा कि 'मैं उनका ही हूँ और वे ही मेरे हैं।' एक भक्तने बड़ा सुन्दर अपना परिचय दिया है—

> नाहं विप्रो न च नरपतिर्नैव वैश्यो न शूद्रो
> नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।
> किन्तु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृताब्धे-
> र्गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासदासानुदासः॥

'मैं न तो ब्राह्मण हूँ, न क्षत्रिय हूँ, न वैश्य हूँ, न शूद्र हूँ। न ब्रह्मचारी हूँ, न गृहस्थ हूँ, न वानप्रस्थी हूँ और न संन्यासी हूँ, किंतु अखिल परमानन्द-परिपूर्ण अमृतसागर-स्वरूप श्रीगोपीपति श्रीकृष्णके चरणकमलके दासके दासका अनुदास हूँ।' इस प्रकार जब 'भगवान्‌का मैं और मेरे भगवान्' बन जाते हैं, तब न तो कोई जगत्‌से सम्बन्ध रह जाता है और न जगत्‌से कोई आशा ही रह जाती है। फिर यदि जगत्‌का सम्बन्ध रहता है तो वह प्रभुके मधुर सम्बन्धको लेकर ही रहता है। किसी ममता-आसक्ति, आशा-आकाङ्क्षाको लेकर नहीं। हर समय, हर जगह, हर अवस्थामें प्राणधन प्रभुकी स्मृति और उनकी उन्मादकारिणी पावन झाँकी होती रहती है। नित्य-निरन्तर प्रतिक्षण उनकी सेवाका सुअवसर-सौभाग्य मिलता रहता है। कोई काम ऐसा होता ही नहीं, जिसमें उनकी सेवा न बनती हो। हम सोते हैं और उनकी

सेवा होती है, हम खाते हैं और उनको भोग लगता है; क्योंकि प्रभुकी सेवाको छोड़कर फिर अलग अपना कोई काम रह ही नहीं जाता। इसीसे भगवान् कहते हैं कि 'वह मेरा ही काम करता है'—(मत्कर्मकृत्, गीता ११ । ५५) इसीलिये सेवाप्राण, सेवापरायण, सेवाजीवन भगवान्के सेवक उनकी सेवाको छोड़कर दिये जानेपर भी मुक्ति स्वीकार नहीं करते—

'दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः।'

(श्रीमद्भागवत ३ । २९ । १३)

कौन विषयी है, कौन साधक,—यह सब कुछ मत देखिये। दूसरोंमें दोष देखनेसे अपनेमें गुणका अभिमान जाग्रत् होता है, जो भगवान्की ओरसे वृत्तिको हटाकर सब लोगोंके दोषदर्शनमें ही लगा देता है और इससे चित्तमें एक नयी ज्वाला और नयी अशान्ति उत्पन्न हो जाती है। सब भगवान्के हैं, यही समझिये। भगवान्के अनुग्रहका आश्रय रखिये। उनकी कृपासे सारे विघ्न टल जायँगे, अवश्य ही टल जायँगे। 'सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि' (गीता १८) भगवान्का प्रसाद आपको बड़े-बड़े विघ्नोंके सरदारोंका सिर कुचलकर आगे बढ़ा ले जायगा। ब्रह्माजीने कहा है—

'त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया
विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो।'

(श्रीमद्भा० १० । २ । ३३)

'प्रभो! आपके द्वारा सुरक्षित होकर वे बड़े-बड़े विघ्न डालनेवाली सेनाके सरदारोंके सिरपर पैर रखकर निर्भय विचरते हैं।'

यह सत्य है कि वातावरणका अच्छा-बुरा असर मनपर पड़ता है और यह भी सत्य है कि मनके विकारोंको, दुर्बलताओंको तथा दोषोंको दूर करने एवं भगवान्के प्रति दृढ़ विश्वास-आस्था उत्पन्न करनेके लिये सत्सङ्गकी आवश्यकता है। अतएव सत्सङ्गकी इच्छा तथा सत्सङ्गकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न भी करना चाहिये। परंतु यदि इतनेपर भी बाहरी सत्सङ्ग न मिले तो सत्सङ्गके लिये व्याकुल रहते हुए भी, इसे भी भगवान्का मङ्गल विधान मानना चाहिये। वे प्रभु तो कभी अलग होते ही नहीं। वे स्वयं ही ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देंगे, जिससे सत्सङ्गसे बढ़कर लाभ उस विपरीत वातावरणमें ही हो जायगा। वे चाहेंगे तो सत्सङ्गका सुअवसर बना देंगे। किसी संतको भेज देंगे। या स्वयं ही प्रकट होकर अथवा अप्रकटरूपसे समस्त विकारों, दुर्बलताओं तथा दोषोंको हरकर उसे भलीभाँति अपना लेंगे। जरा भी निराश न होकर सदा-सर्वदा भगवान्की कृपापर विश्वास रखना चाहिये और सर्वत्र सदा उनकी कृपा देखते रहना चाहिये।

भगवान्की कृपाका अटल और अडिग विश्वास बना रहे, ऐसी आपकी चाह बहुत उत्तम है। भगवान् हमारी प्रत्येक चाहको जानते हैं। विश्वास रखिये वे सच्ची चाहको पूरा भी करते हैं।

भगवान्का तो स्वभाव ही दीनहितकारी है। वे सदा ही दीन, हीन, मलिन, पामर जनोंपर सहज प्रीति करते आये हैं—

'बिरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति।'

आप क्यों मानते हैं कि आपपर भगवान्की अनन्त और असीम कृपा नहीं है। आपको निश्चय मान लेना चाहिये कि आपपर भगवान्की अत्यन्त और असीम कृपा है। वह कृपा आपको दीखती नहीं। इससे क्या हुआ? भूख-प्यास आँखसे दीखती है क्या? मनके हर्ष-विषाद आँखसे दीखते हैं क्या? पर जरा गहराईसे विचार कीजिये, यदि आपके मनमें अडिग और अटल कृपापर विश्वासकी चाह होती है, आप निरन्तर उनका मधुर स्मरण करना चाहते हैं, आप सदा-सर्वदा प्रभुको अपने हृदयमें बसाना और स्वयं उनके हृदयमें बसना चाहते हैं, आपको उनकी चर्चासे रहित बातें अच्छी नहीं लगतीं, आपको उनकी मधुर लीलाकी चर्चाके बिना चैन नहीं पड़ता। आप सदा-सर्वदा उनकी ही सन्निधिमें रहना चाहते हैं, यह क्या उनकी प्रत्यक्ष कृपा नहीं है? इस युगमें—कितने आदमी ऐसे हैं, जिनके ये भाव हैं? अतएव आप विश्वास कीजिये, फिर अनुभूति भी हो जायगी।

पर यदि सांसारिक विघ्नोंका अवसान न हो, विघ्न-पर-विघ्न आते रहें, तो उसमें भी प्रभुकी मङ्गलमयी कृपाका ही दर्शन करते रहिये। यह समझिये कि 'मेरी सारी संसारासक्तिका नाश करनेके लिये ही प्रभुकी महती कृपा विघ्नमयी भीषण मूर्ति धरकर पधारी हैं। प्रभु अब मेरी सारी आशा-आसक्ति और कामना-वासनाका शीघ्र ही नाश करना चाहते हैं। अतः अब तो और भी जोरसे लगकर उनका स्मरण करूँ। मतलब यह है कि उनके मङ्गलविधानमें सर्वथा विश्वास कीजिये और उनकी भेजी हुई प्रत्येक परिस्थितिसे लाभ उठाइये।

यह परम सत्य है कि वे प्रत्येक परिस्थिति हमारे लाभके लिये ही भेजा करते हैं। हाँ, परिस्थिति वैसे ही अलग-अलग

होती है जैसे निपुण वैद्यका विभिन्न प्रकारके रोगियोंके लिये विभिन्न प्रकारकी चिकित्साओंका चुनाव और प्रयोग । हो सकता है कोई ओषधि मीठी हो, भरपेट भोजन मिलता हो और आराम कराया जाता हो, एवं कोई ओषधि अत्यन्त कड़वी हो, कहीं अङ्गच्छेदन भी हो और कहीं लम्बे उपवास-की ही व्यवस्था हो । पर दोनों ही स्थितिमें विधान होता है रोगनाशके लिये ही । इसी प्रकार भगवान्के प्रत्येक मङ्गलमय विधानको मङ्गलमय समझकर सादर ग्रहण कीजिये और हर परिस्थितिमें कृतज्ञतापूर्वक उनका स्मरण करते रहिये । समर्पण तो वे अपनी चीजका आप ही करा लेंगे । हमारी ओरसे समर्पणकी तैयारी रहनी चाहिये ।

यह कभी मत समझिये कि उनके घर, उनके हृदयमें हमारे लिये जगह नहीं है । हमको तो वे अपने हृदयमें ही रखते हैं और वे सदा हमारे हृदयमें ही रहते हैं, पर सहसा प्रत्यक्ष नहीं होते । इसमें भी उनका मङ्गलमय रहस्य ही है । अतएव सदा सब प्रकारसे उल्लसित और प्रफुल्लित हृदयसे उनका मङ्गल-स्मरण करते रहिये । शेष भगवत्कृपा ।

कौशल

(रचयिता—श्रीब्रह्मानन्दजी 'बन्धु')

(१)

शरद-पूर्णिमा-चन्द्राननपर,
मधुर हास्यका मृदु आभास ।
अम्बर-तलका विमल वर्ण अति,
दिशा-देवियोंका उल्लास ॥

(२)

रजनि-समयमें गिरि-तुषारपर,
शशि-किरणोंका इतराना ।
उछल-उछलकर तरल तरंगों-
का जलनिधिमें इठलाना ॥

(३)

घोर तमीमें, घन-गर्जनमें,
चपलाका चंचल उद्गार ।
नीरव निशिमें, नभ-मंडलपर,
उल्काका भयशील बिकार ॥

(४)

रक्तवर्णका रविसे पहिले,
प्राचीमें रँग दिखलाना ।
फिर दिनकरका प्रकटित होकर,
स्वर्ण-करोंका फैलाना ॥

(५)

शीतल-मंद-सुगंध-पवनका,
अहा ! प्रभातीमें संचार ।
गुन-गुन करना भ्रमर-भीड़का,
फिर सौरभका सुभग-प्रसार ॥

(६)

नभके विस्तृत-से प्रांगणमें,
श्याम निशाके अंचलमें ।
तारक-बालाओंकी क्रीड़ा,
निज अविचल चंचलपनमें ॥

(७)

झूम-झूम हिलना वृक्षोंका,
ऋतु वसंतके यौवनमें ।
कू-कू करना कोकिल-कुलका,
मंजरिमय रसाल-वनमें ॥

(८)

झर-झर नित निर्झरका झरकर,
निज अविचलता दिखलाना ।
'मैं अविचल हूँ; मनुज विचल हैं'—
सिद्धि सिद्धकर बतलाना ॥

(९)

कल-कलकर सरिताका बहकर,
रचना नित संगीत नया ।
रवि-किरणोंका, शशि-किरणोंका,
लखना निशि-दिन नृत्य नया ॥

(१०)

याद दिलाते ये सब हमको,
उस शिल्पीके कौशलकी ।
सीमा पा न सके शिवतक भी,
जिसकी रचनाके बलकी ॥

श्रीहरिः

गीताप्रेस, गोरखपुरकी सरल, सुन्दर, सस्ती, धार्मिक पुस्तकें

१–श्रीमद्भगवद्गीता-तत्त्वविवेचनी–'कल्याण'के 'गीता-तत्त्वाङ्क'में प्रकाशित गीताकी हिंदी-टीकाका संशोधित संस्करण, टीकाकार–श्रीजयदयालजी गोयन्दका, पृष्ठ ६८४, रंगीन चित्र ४, मूल्य … ४)

२–श्रीमद्भगवद्गीता शांकरभाष्य–[हिंदी-अनुवादसहित] पृष्ठ ५२०, तिरंगे चित्र ३, मूल्य … २।।।)

३–श्रीमद्भगवद्गीता रामानुजभाष्य–[हिंदी-अनुवादसहित] पृष्ठ ६०८, तिरंगे चित्र ३, सजिल्द, मूल्य … २।।)

४–श्रीमद्भगवद्गीता–मूल, पदच्छेद, अन्वय, साधारण भाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान और सूक्ष्म विषय एवं त्यागसे भगवत्प्राप्ति' नामक लेखसहित, मोटा टाइप, कपड़ेकी जिल्द, पृष्ठ ५७०, रंगीन चित्र ४, मूल्य १।)

५–श्रीमद्भगवद्गीता–प्रत्येक अध्यायके माहात्म्यसहित (सटीक) मोटे अक्षरोंमें, ढंग लाहोरी, पृ० ४२४, मूल्य ।।।=), सजिल्द १।)

६–श्रीमद्भगवद्गीता–[मझली] पृष्ठ ४६८, रंगीन चित्र ४, मूल्य अजिल्द ।।≡), सजिल्द … १)

७–श्रीमद्भगवद्गीता (गुटका)–१।) वालीकी ठीक नकल, पदच्छेद, अन्वय और साधारण भाषाटीकासहित, साइज २२×२९=३२ पेजी, पृष्ठ ५८४, तीन तिरंगे चित्र, मूल्य … … ।।)

८–श्रीमद्भगवद्गीता–श्लोक, साधारण भाषाटीका, टिप्पणी, प्रधान विषय, मोटा टाइप, पृष्ठ ३१६, मूल्य ।।), सजि० ।।।=)

९–श्रीमद्भगवद्गीता–मूल, मोटे अक्षरवाली, सचित्र, पृष्ठ २१६, मूल्य अजिल्द ।–), सजिल्द … ।।–)

१०–श्रीमद्भगवद्गीता–केवल भाषा, अक्षर मोटे हैं, चित्र १, पृष्ठ १९२, मूल्य … … ।)

११–श्रीपञ्चरत्न-गीता–सचित्र, श्रीगीता, विष्णुसहस्रनाम, भीष्मस्तवराज, अनुस्मृति, गजेन्द्र-मोक्ष, पृष्ठ १८४, मूल्य ≡)

१२–श्रीमद्भगवद्गीता और विष्णुसहस्रनाम–(मूल, छोटा टाइप) आकार २।।×३। इञ्च, पृष्ठ २७२, मूल्य … ≡)

१३–श्रीमद्भगवद्गीता–साधारण भाषाटीका, पाकेट-साइज, सचित्र, पृष्ठ ३५२, मूल्य अजिल्द =)।।, सजिल्द … ।)।।

१४–श्रीमद्भगवद्गीता–ताबीजी, मूल, पृष्ठ २९६, मूल्य … … … =)

१५–श्रीमद्भगवद्गीता–विष्णुसहस्रनामसहित, पृष्ठ १२८, सचित्र, मूल्य –)।।, सजिल्द … … =)।।

१६–ईशादि नौ उपनिषद्–अन्वय, हिंदी-व्याख्यासहित, पृष्ठ ४४८, सजिल्द, मूल्य … … २)

१७–ईशावास्योपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ ५२, मूल्य … … ≡)

१८–केनोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १४२, मूल्य … … ।।)

१९–कठोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १७८, मूल्य … … ।।–)

२०–प्रश्नोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १२८, मूल्य … … ।≡)

२१–मुण्डकोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ १२२, मूल्य … … ।≡)

२२–उपनिषद्-भाष्य खण्ड १–ईशसे मुण्डकतक ५ उपनिषद्, सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सजिल्द, मूल्य … २।।=)

२३–माण्डूक्योपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ २८४, सचित्र, मूल्य … … १)

२४–ऐतरेयोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, पृष्ठ १०४, मूल्य … … … ।=)

२५–तैत्तिरीयोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ २५२, मूल्य … … ।।।–)

२६–उपनिषद्-भाष्य खण्ड २–माण्डूक्य, ऐतरेय तथा तैत्तिरीयोपनिषद्, सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सजिल्द, मूल्य … २।।≡)

२७–छान्दोग्योपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, ९ रंगीन चित्र, पृष्ठ ९६८, सजिल्द, मूल्य … ३।।।)

२८–बृहदारण्यकोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, ६ रंगीन चित्र, पृष्ठ १३८४, सजिल्द, मूल्य … ५।।)

२९–श्वेताश्वतरोपनिषद्–सानुवाद, शांकरभाष्यसहित, सचित्र, पृष्ठ २६८, मूल्य … … ।।।=)

३०–ईशावास्योपनिषद्–अन्वय तथा सरल हिंदी-व्याख्यासहित, पृष्ठ १६, मूल्य … … –)

३१–वेदान्तदर्शन–हिंदी-व्याख्यासहित, पृष्ठ ४१६, सचित्र, सजिल्द, मूल्य … … २)

३२–पातञ्जलयोगदर्शन–सटीक, व्याख्याकार–श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दका, पृष्ठ १९२, दो चित्र, मूल्य ।।।), सजिल्द १)

३३–श्रीभागवत-सुधासागर–सम्पूर्ण श्रीमद्भागवतका भाषानुवाद, पृष्ठ १०१६, चित्र तिरंगे २६, सजिल्द, मूल्य … ८।।)

३४–श्रीमद्भागवतमहापुराण–मूल, मोटा टाइप, पृष्ठ ६९२, चित्र १, सजिल्द, मूल्य … … ६)

३५–श्रीमद्भागवतमहापुराण–मूल गुटका, कपड़ेकी जिल्द, पृष्ठ ७६८, सचित्र, मूल्य … … ३)

९—

३६-**श्रीप्रेम-सुधा-सागर**-श्रीमद्भागवतके केवल दशमस्कन्धका भाषानुवाद, पृष्ठ ३१६, चित्र १५, सजिल्द, मूल्य ... ... ३॥)

३७-**श्रीभागवतामृत**-सटीक, पृष्ठ ३०४, रंगीन चित्र ८, सजिल्द, मूल्य ... ... १॥।)

३८-**भागवत एकादश स्कन्ध**-सटीक, सचित्र, पृष्ठ ४४८, मूल्य १), सजिल्द ... १।=)

३९-**श्रीविष्णुपुराण**-सानुवाद, चित्र ८, पृष्ठ ६२४, सजिल्द, मूल्य ... ... ४)

४०-**अध्यात्मरामायण**-हिंदी-अनुवादसहित, पृष्ठ ४००, सचित्र, कपड़ेकी जिल्द, मूल्य ... ३)

४१-**श्रीरामचरितमानस**-सटीक, रंगीन चित्र ८, पृष्ठ १२००, सजिल्द, मूल्य ... ७॥)

४२-**श्रीरामचरितमानस**-मूल पाठ, रंगीन चित्र ८, पृष्ठ ५१६, मूल्य ... ... ४)

४३-**श्रीरामचरितमानस**-सटीक [मझला साइज] रंगीन चित्र ८, पृष्ठ १००८, सजिल्द, मूल्य ... ३॥)

४४-**श्रीरामचरितमानस**-मूल, मझला साइज, सचित्र, पृष्ठ ६०८, मूल्य ... ... २)

४५-**श्रीरामचरितमानस**-मूल, गुटका, पृष्ठ ६८८, रंगीन चित्र १ और ७ लाइन ब्लाक, सजिल्द, मूल्य ॥।)

४६-**बालकाण्ड**-मूल, पृष्ठ १९२, सचित्र, मूल्य ॥=)

४७- ,, -सटीक, पृष्ठ३१२, सचित्र, मूल्य ... १=)

४८-**अयोध्याकाण्ड**-मूल, पृष्ठ १६०, सचित्र, मूल्य ॥)

४९- ,, -सटीक, पृष्ठ २६४, सचित्र, मूल्य ॥।-)

५०-**अरण्यकाण्ड**-मूल, पृष्ठ ४०, मूल्य ... ≈)

५१- ,, -सटीक, पृष्ठ ६४, मूल्य ... ।)

५२-**किष्किन्धाकाण्ड**-मूल, पृष्ठ २४, मूल्य ... =)

५३- ,, -सटीक, पृष्ठ ३६, मूल्य ... =)

५४-**सुन्दरकाण्ड**-सटीक, पृष्ठ ६०, मूल्य ... ।)

५५-**लंकाकाण्ड**-मूल, पृष्ठ ८२, मूल्य ... ।)

५६- ,, -सटीक, पृष्ठ १३२, मूल्य ... ॥)

५७-**उत्तरकाण्ड**-मूल, पृष्ठ ८८, मूल्य ... ।)

५८- ,, -सटीक, पृष्ठ १४४, मूल्य ... ॥)

५९-**लीला-चित्र-मन्दिर-दर्शन**-लीला-चित्र-मन्दिर-में संगृहीत ५६९ चित्रोंके छाया-चित्र, आकार '१०×१५' आर्टपेपरपर छपे, पृष्ठ १४६, तिरंगा मुखपृष्ठ, सजिल्द, मूल्य ... ७)

६०-**गीता-भवन-चित्र-दर्शन**-गीता-भवन,ऋषिकेश-के ३५ सुन्दर बहुरंगे और १ इकरंगे चित्रोंका दर्शन, आकार १०×७॥, पृष्ठ-संख्या ४०, मूल्य ... २।)

६१-**मानस-रहस्य**-सचित्र, पृष्ठ५१२, मू० १।), स० १॥=)

६२-**मानस-शंका-समाधान**-पृष्ठ१८४,सचित्र, मू० ॥)

६३-**विनय-पत्रिका**-सटीक, पृष्ठ ४७२, सचित्र, मूल्य १), सजिल्द ... ... १।=)

६४-**गीतावली**-सटीक, पृष्ठ ४४४, मू० १), सजिल्द १।=)

६५-**कवितावली**-सटीक, सचित्र, पृष्ठ २२४, मू० ॥-)

६६-**दोहावली**-सानुवाद, सचित्र, पृष्ठ १९६, मूल्य ॥)

६७-**ईश्वरकी सत्ता और महत्त्व**-पृष्ठ ४८०, मूल्य १।), सजिल्द ... ... १॥=)

६८-**सूर-विनय-पत्रिका**-(नयी पुस्तक) सरल भावार्थसहित, सचित्र, पृष्ठ ३२४, मूल्य ॥।=), सजिल्द ... ... १।)

६९-**सूर-रामचरितावली**-सरल भावार्थसहित, पृष्ठ-संख्या २५४, सुन्दर तिरंगा चित्र, मूल्य ॥≈), सजिल्द ... ... १-)

७०-**श्रीकृष्ण-बाल-माधुरी**-सरल भावार्थसहित, पृष्ठ-संख्या २९६, सुन्दर तिरंगा चित्र, मूल्य ॥।=), सजिल्द ... ... १।)

७१-**शरणागति-रहस्य**-पृष्ठ ३६०, सचित्र, मूल्य ॥।=)

७२-**प्रेम-योग**-पृष्ठ ३४४, सचित्र, मूल्य ... १॥)

७३-**श्रीतुकाराम-चरित्र**-सचित्र, पृष्ठ ५९२, मूल्य १।=), सजिल्द ... ... १॥।)

७४-**विष्णुसहस्रनाम शांकरभाष्य**-पृष्ठ २८०, सचित्र, मूल्य ... ... ॥।=)

७५-**दुर्गासप्तशती**-सानुवाद, सचित्र, पृष्ठ २४०, मूल्य ॥।), सजिल्द ... ... १)

७६-**दुर्गासप्तशती**-मूल,सचित्र,पृष्ठ१५२,मू०॥),स० ॥।)

७७-**आनन्दमय जीवन**-पृष्ठ २२०, मूल्य ... ॥।-)

७८-**स्वर्ण-पथ**-सुन्दर टाइटल, पृष्ठ २१६, मूल्य ॥।)

७९-**सत्सङ्गके बिखरे मोती**-पृष्ठ २४४, मूल्य ॥।)

८०-**तत्त्व-चिन्तामणि**-ले०-श्रीजयदयालजी गोयन्दका (भाग १) सचित्र, पृष्ठ ३५२, मूल्य॥=), सजिल्द १)

८१-(भाग २) सचित्र,पृष्ठ ५९२, मूल्य ॥।=),सजिल्द १।)

८२-(भाग ३) सचित्र,पृष्ठ ४२४, मू० ॥≈), सजिल्द १-)

८३-(भाग ४) सचित्र,पृष्ठ ५२८,मू० ॥।-),सजिल्द १≈)

८४-(भाग ५) सचित्र,पृष्ठ ४९६,मू० ॥।-) सजिल्द १≈)

८५-(भाग ६) सचित्र, पृष्ठ ४५६,मू० १),सजिल्द १।=)

८६-(भाग ७) सचित्र,पृष्ठ ५३०,मू० १=) सजिल्द १॥)

८७-**छोटे आकारका गुटका संस्करण**-(भाग १) सचित्र, पृष्ठ ४४८, मूल्य ।-), सजि० ॥)

१५१–प्रेमी भक्त उद्धव–पृष्ठ ६४, सचित्र, मूल्य ··· ≈)
१५२–महात्मा विदुर–पृष्ठ ५६, सचित्र, मूल्य ··· =)॥
१५३–भक्तराज ध्रुव–पृष्ठ ४८, २ चित्र, मूल्य ··· ≈)
१५४–शिक्षाप्रद ग्यारह कहानियाँ–पृष्ठ १२८, मूल्य ।)
१५५–सती सुकला–पृष्ठ ६८, सचित्र, मूल्य ··· ।)
१५६–परमार्थ-पत्रावली–(भाग १) पृष्ठ ११२, सचित्र, मू० ।)
१५७– ,, –(भाग २) पृष्ठ १७२, सचित्र, मू० ।)
१५८– ,, –(भाग ३) पृष्ठ २००, सचित्र, मू० ॥)
१५९– ,, –(भाग ४) पृष्ठ २१४, सचित्र, मू० ॥)
१६०–कल्याण-कुञ्ज–(भाग १) पृष्ठ १३६, सचित्र, मू० ।)
१६१– ,, –(भाग २) पृष्ठ १६०, सचित्र, मू० ।-)
१६२– ,, –(भाग ३) पृष्ठ १८४, सचित्र, मू० ।=)
१६३–महाभारतके कुछ आदर्श पात्र–पृष्ठ १२८, मू० ।)
१६४–भगवान्पर विश्वास–पृष्ठ-संख्या ६४, मूल्य ।)
१६५–श्रीरामचरितमानसका पाठ तथा मानस-व्याकरण–पृष्ठ ८४, मूल्य ··· ··· ।)
१६६–गीताप्रेस-लीला-चित्र-मन्दिर-दोहावली–पृष्ठ ५६, मूल्य ··· ··· ।)
१६७–गीताद्वार (गीताप्रेसका प्रवेशद्वार)–४ रंगीन चित्र, पृष्ठ १६, मूल्य ··· ।)
१६८–बाल-चित्र-रामायण–(भाग १) ४९ चित्र, मूल्य ।)
१६९– ,, ,, –(भाग २) पृष्ठ १६, मूल्य ।)
१७०–बाल-चित्रमय चैतन्यलीला–पृष्ठ ३६, मूल्य ।-)
१७१–बाल-चित्रमय बुद्धलीला–पृष्ठ ३६, मूल्य ।-)
१७२–बाल-चित्रमय श्रीकृष्णलीला [भाग १]–आकार १०×७॥, पृष्ठ ३६, सुन्दर दोरंगा मुखपृष्ठ, मूल्य ··· ··· ।=)
१७३–बाल-चित्रमय श्रीकृष्णलीला [भाग २]–आकार १०×७॥, पृष्ठ ३६, सुन्दर दोरंगा मुखपृष्ठ, आर्टपेपरपर छपे ४८ सादे, १ बहुरंगे चित्र, मूल्य ।=)
१७४–भगवान राम भाग १–पृष्ठ ५२, चित्र ८, मूल्य ।)
१७५– ,, ,, भाग २–पृष्ठ ५२, चित्र ८, मूल्य ।)
१७६–श्रीकृष्ण-रेखा-चित्रावलि (प्रथम खण्ड)–आकार ५×७॥, पृष्ठ ६४, रेखाचित्र ६०, चित्र-परिचयसहित, मूल्य ··· ··· ।=)
१७७–श्रीकृष्ण-रेखा-चित्रावलि (द्वितीय खण्ड)–आकार ५×७॥, पृष्ठ ६४, रेखाचित्र ६०, चित्र-परिचयसहित, मूल्य ··· ··· ।=)
१७८–भगवान श्रीकृष्ण भाग १–पृष्ठ ६८, मूल्य ।-)
१७९–भगवान श्रीकृष्ण भाग २–पृष्ठ ६४, मूल्य ।-)
१८०–आरती-संग्रह–पृष्ठ ८०, मूल्य ··· ।)
१८१–सत्सङ्ग-माला–पृष्ठ १००, मूल्य ··· ।)
१८२–बालकोंकी बातें–पृष्ठ १५२, मूल्य ··· ।)
१८३–वीर बालक–पृष्ठ ८८, मूल्य ··· ।)
१८४–सच्चे और ईमानदार बालक–पृष्ठ ७६, सुन्दर तिरंगा टाइटल, मूल्य ··· ··· ।)
१८५–गुरु और माता-पिताके भक्त बालक–पृष्ठ ८०, मू० ।)
१८६–वीर बालिकाएँ–पृष्ठ ६८, मूल्य ··· ≈)
१८७–दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ पृष्ठ ६८, मूल्य ··· ··· ≈)
१८८–हिंदी बाल-पोथी–शिशु-पाठ (भाग १) पृष्ठ ४०, मूल्य ··· ≈)
१८९– ,, –शिशुपाठ (भाग २) पृष्ठ ४०, मू० ≈)
१९०– ,, –पहली पोथी (कक्षा १ के लिये) मू० ।-)
१९१– ,, –दूसरी पोथी (कक्षा २ के लिये) मू० ।=)
१९२–प्रार्थना–पृष्ठ ५६, मूल्य ··· ≈)
१९३–दैनिक कल्याण-सूत्र–पृष्ठ ९२, मूल्य ··· ≈)
१९४–आदर्श नारी सुशीला–पृष्ठ ५६, मूल्य ··· ≈)
१९५–आदर्श भ्रातृ-प्रेम–पृष्ठ १०४, मूल्य ··· ≈)
१९६–मानव-धर्म–पृष्ठ ९६, मूल्य ··· ≈)
१९७–गीता-निबन्धावली–पृष्ठ ८०, मूल्य ··· =)॥
१९८–साधन-पथ–पृष्ठ ६८, सचित्र, मूल्य ··· =)॥
१९९–अपरोक्षानुभूति–पृष्ठ ४०, सचित्र, मूल्य ··· =)॥
२००–मननमाला–पृष्ठ ५६, मूल्य ··· =)॥
२०१–नवधा भक्ति–पृष्ठ ६४, सचित्र, मूल्य ··· =)
२०२–बाल-शिक्षा–पृष्ठ ६४, सचित्र, मूल्य ··· =)
२०३–श्रीभरतजीमें नवधा भक्ति–पृष्ठ ४८, सचित्र, मू० =)
२०४–गीताभवन-दोहा-संग्रह–पृष्ठ ४८, मूल्य ··· =)
२०५–वैराग्य-संदीपनी–सटीक–पृष्ठ २४, सचित्र, मूल्य =)
२०६–भजन-संग्रह–भाग १, पृष्ठ १९२, मूल्य ··· =)
२०७– ,, –भाग २, पृष्ठ १६८, मूल्य ··· =)
२०८– ,, –भाग ३, पृष्ठ २२८, मूल्य ··· =)
२०९– ,, –भाग ४, पृष्ठ १६०, मूल्य ··· =)
२१०– ,, –भाग ५, पृष्ठ १४४, मूल्य ··· =)
२११–गजेन्द्र-मोक्ष–पदच्छेद, अन्वय और भावार्थसहित –)॥
२१२–बाल-प्रश्नोत्तरी–पृष्ठ २८, मूल्य ··· –)॥
२१३–स्वास्थ्य-सम्मान और सुख–मूल्य ··· –)॥
२१४–स्त्रीधर्मप्रश्नोत्तरी–पृष्ठ ५६, मूल्य ··· –)॥

छोटी-छोटी ५२ पुस्तकोंके बंद लिफाफोंमें ४ पैकेट

Our English Publications

दो नयी पुस्तकें

१–दोहावलीके चालीस दोहे (१ से ४० दोहेतक सानुवाद)—आकार ५×७॥ पृष्ठ १२, मूल्य)॥ मात्र ।

२–सुगम उपासना—आकार २२×२९, बत्तीस पेजी, पृष्ठ २४, मूल्य)॥ मात्र ।

पुस्तकें डाकसे मँगानेसे डाक-खर्च एक आना प्रति छटाँक तथा रजिस्ट्री या वी०पी० खर्च अलग लगता है इसलिये स्थानीय पुस्तक-विक्रेतासे खरीदनी चाहिये इससे भारी डाक-खर्चकी बचत हो सकेगी ।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

'कल्याण'के पुराने प्राप्य नौ विशेषाङ्क

१३ वें वर्षका मानसाङ्क—(पूरे चित्रोंसहित)—पृष्ठ ९४४, चित्र बहुरंगे सुनहरी ८, दुरंगे सुनहरी ४, तिरंगे ४६, इकरंगे १२०, मूल्य ६॥), सजिल्द ७॥) ।

१७ वें वर्षका संक्षिप्त महाभारताङ्क—पूरी फाइल दो जिल्दोंमें (सजिल्द)—पृष्ठ-संख्या १९१८, तिरंगे चित्र १२, इकरंगे लाइन चित्र ९७५ (फरमोंमें), मूल्य दोनों जिल्दोंका १०) ।

१८ वें वर्षका संक्षिप्त वाल्मीकीय रामायणाङ्क—पृष्ठ-संख्या ५३६, रेखाचित्र १३७ (फरमोंमें), सुन्दर बहुरंगे चित्र १४, इकरंगे हाफटोन सुन्दर चित्र ११, मूल्य ५≡), सजिल्द ६≡) ।

२२ वें वर्षका नारी-अङ्क—पृष्ठ-संख्या ८००, चित्र २ सुनहरी, ९ रंगीन, ४४ इकरंगे तथा १९८ लाइन, मूल्य ६≡), सजिल्द ७।≡) मात्र ।

२४ वें वर्षका हिंदू-संस्कृति-अङ्क—पृष्ठ ९०४, लेख-संख्या ३४४, कविता ४६, संगृहीत २९, चित्र २४८, मूल्य ६॥), साथमें अङ्क २-३ बिना मूल्य ।

२६ वें वर्षका भक्त-चरिताङ्क—पूरी फाइल, पृष्ठ १५१२, लेख-संख्या ७३९, तिरंगे चित्र ३६ तथा इकरंगे चित्र २०१, मूल्य ७॥) मात्र ।

२७ वें वर्षका बालक अङ्क—पृष्ठ-संख्या ८१६, तिरंगे तथा सादे बहुसंख्यक चित्र, मूल्य ७॥)।

२८ वें वर्षका संक्षिप्त नारद-विष्णुपुराणाङ्क—पूरी फाइल, पृष्ठ-संख्या १५२४, चित्र तिरंगे ३१, इकरंगे लाइन १९१ (फरमोंमें), मूल्य ७॥), सजिल्दका ८॥) ।

२९ वें वर्षका संतवाणी-अङ्क—पृष्ठ ८००, चित्र सुनहरी ४, तिरंगे ८०, संतोंके छोटे चित्र १४०, मूल्य ७॥) ।

व्यवस्थापक—'कल्याण', पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

धूर्तोंसे सावधान

कोई एक धूर्त मनुष्य अपना नाम महेशचन्द या मदनलाल महेशचन्द पोद्दार, और अपनेको मेरा सगा या चचेरा भाई, तथा कलकत्ते और किसनगंज (पूर्णिया) में उसका कारोबार है, इस समय रास्तेमें सामान खो जानेसे विपत्तिमें पड़ रहा हूँ, कलकत्ता पहुँचते ही रुपये वापस भेज दूँगा—यों कहकर और फार्मके झूठे नाम-पते बतलाकर लोगोंसे रुपये ठगता है। कुछ समय पहले अगस्त मुनि गुफा, नर्मदासे सूचना मिली थी, अब फिर दत्तमन्दिर, जरूड़से पत्र आया है। दोनों स्थानोंसे वह चालीस-चालीस रुपये ले गया है।

ऐसे धूर्तोंसे सावधान रहनेके लिये 'कल्याण' द्वारा पहले कई बार सूचनाएँ दी जा चुकी हैं। अब फिर यह निवेदन है कि मेरे सगा भाई तो कोई है ही नहीं, कुटुम्बमें भी महेशचन्द नामका कोई व्यक्ति नहीं है। अतः गीताप्रेस या कल्याणके नामपर अथवा मेरे या श्रद्धेय श्री[illegible]यालजीके नामपर—अपनेको गीताप्रेस कल्याणसे सम्बन्धित अथवा हम लोगोंका कोई सम्बन्धी बतलाकर कोई भी पैसे माँगे तो उसे कदापि न दिया जाय और हो सके तो पुलिसके हवाले कर दिया जाय। हमारा ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है।

पहले सूचना मिली थी—लोग अपनेको कल्याणमें प्रकाशित 'कल्याण' शीर्षक लघु लेखोंके तथा 'कामके पत्रों'के लेखक बताकर लोगोंको ठगते हैं। ऐसे सभी लोगोंसे सावधान रहना चाहिये। 'कल्याण' तथा 'कामके पत्र' यहींसे स्वयं सम्पादकके द्वारा ही लिखे जाते हैं, बाहरका कोई भी आदमी उनका लेखक नहीं है। धूर्तोंसे सावधान रहें।

हनुमानप्रसाद पोद्दार

सम्पादक—'कल्याण' गोरखपुर